तरुचिन्तन

2026

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

तरुचिन्तन
2026

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

श्रीमती कंचन देवी, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

संपादक मंडल

प्रधान संपादक

डॉ. सुधीर कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार निदेशालय)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

संपादक

डॉ. गीता जोशी
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार प्रभाग)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सहायक संपादक

श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (राजभाषा)

प्रकाशक

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघर–न्यू फॉरेस्ट (देहरादून उत्तराखंड)

अस्वीकरण (डिस्क्लेमर)

तरुचिंतन में व्यक्त किए गए विचार लेखक के निजी विचार हैं। इसमें दी गई किसी भी सूचना की सटीकता, संपूर्णता, व्यावहारिकता अथवा सच्चाई के प्रति संपादक मंडल उत्तरदायी नहीं है।

कंचन देवी, महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की राजभाषा गृह पत्रिका तरुचिन्तन (वर्ष–2026) के नवीन अंक के सफल प्रकाशन हेतु समस्त भा.वा.अ.शि.प. परिवार एवं हिन्दी प्रेमियों को अनेक शुभकामनाएँ।

साथियों, हमारें संविधान के भाग–17 के अनुच्छेद 343 से लेकर 351 तक राजभाषा से संबंधित प्रावधान निर्धारित किए गए हैं। इनमें से अनुच्छेद 351 के तहत निर्देश दिए गए हैं कि केंद्र सरकार हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार बढ़ाने और उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रयास करें। इन निर्देशों के अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। इसके लिए हिन्दी की प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं (असमिया, बांग्ला, गुजराती, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगु, उर्दू, बोडो, संथाली, मैथिली, डोगरी) में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें। इसी निर्देश को शिरोधार्य कर वर्ष 2009 से तरुचिन्तन का निरंतर प्रकाशन होता आ रहा है, जिसमें परिषद् के वैज्ञानिक, तकनीकी कार्मिक, शोधार्थी वानिकी शोध तथा अन्य संबन्धित विषयों पर मौलिक, उत्कृष्ट और रुचिपूर्ण लेखों के माध्यम से राजभाषा के उत्थान में अपना सम्पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। परिषद् द्वारा किया जा रहा यह कार्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का एक सराहनीय प्रयास है।

हिन्दी राष्ट्रीय एकता और पहचान की प्रतीक है। विभिन्न संस्कृतियों को जोड़ने के साथ ही यह समृद्ध साहित्य और परम्पराओं को संजोती भी है। हिन्दी ने देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अब यह सिर्फ हिन्दी भाषियों की भाषा नहीं रही बल्कि इसने हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों के साथ विदेश में भी सम्मानजनक स्थान बनाया है। राजभाषा विभाग द्वारा विगत कई वर्षों से हिन्दी दिवस के अवसर पर अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलनों का सफलतापूर्वक आयोजन किया जा रहा है। ये सम्मेलन प्रायः हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में आयोजित होते हैं, जिनमें हिंदीतर भाषी हिन्दी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता रहती है। यह तथ्य स्वयं इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी की स्वीकार्यता और प्रभाव क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। आइए हम सब मिलकर हिन्दी में काम करें और अपने सहयोगियों को भी प्रोत्साहित करें।

अंत में, मैं परिषद् की गृह पत्रिका **तरुचिंतन** के इस अंक के प्रकाशन के लिए डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक, विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् एवं उनकी टीम को पुनः एक बार हार्दिक बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि परिषद् वानिकी और राजभाषा दोनों के उन्नयन हेतु अपने प्रयासों को इसी प्रकार निरंतर गतिशील रखेगा और सभी के लिए प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

कंचन देवी

सत्यमेव जयते

डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

प्रधान संपादक की कलम से...

राजभाषा हिंदी भारत की शासन–प्रशासन की प्रमुख भाषा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत हिंदी को देवनागरी लिपि में संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। यह देश की सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय चेतना और जनसंपर्क की सशक्त माध्यम है। इस प्रकार राजभाषा हिंदी राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के साथ–साथ सुशासन और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजभाषा हिंदी का उद्देश्य सरकारी कार्यों में सरल, सहज और प्रभावी संप्रेषण सुनिश्चित करना है, ताकि शासन तथा जनता के बीच की दूरी को कम किया जा सके। वर्तमान में प्रशासन, विधि, शिक्षा, विज्ञान और तकनीक जैसे क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी के प्रचार–प्रसार और विकास की जिम्मेदारी संघ सरकार पर निहित है तथा इस प्रकार राजभाषा हिंदी का प्रचार–प्रसार सभी शासकीय संस्थानों का संवैधानिक कर्तव्य है।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् राजभाषा के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु पूर्णतः प्रतिबद्ध है। परिषद् द्वारा अपने कार्यालयों में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु नियमित रूप से अनेक राजभाषाई गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। इनमें राष्ट्रीय एवं मंत्रालय स्तर पर आयोजित राजभाषा कार्यक्रमों में सहभागिता, त्रैमासिक राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित बैठकें, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति में सक्रिय भागीदारी तथा अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन की समीक्षा, मूल्यांकन एवं मार्गदर्शन जैसी पहलें शामिल हैं।

परिषद् द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' में राजभाषा से संबंधित गतिविधियों के साथ–साथ अन्य महत्वपूर्ण विषयों को भी समाहित किया जाता है। यह पत्रिका परिषद् के अधीन सभी संस्थानों तथा केंद्रों में कार्यरत अधिकारियों, कर्मचारियों एवं उनके परिवारजनों की उत्कृष्ट, सृजनात्मक तथा शोधपरक रचनाओं को अभिव्यक्ति का मंच प्रदान करती है। 'तरुचिंतन' को चार प्रमुख खंड में विभाजित किया है। परिषद् में संचालित राजभाषा से संबंधित गतिविधियों का सचित्र एवं विस्तृत विवरण **राजभाषा खंड** में प्रस्तुत किया गया है। वानिकी, पर्यावरण संरक्षण तथा जैव विविधता से जुड़े स्तरीय एवं शोधपरक लेखों को **वानिकी खंड** के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। विभिन्न विषयों पर आधारित ज्ञानवर्धक एवं विचारोत्तेजक लेखों का संकलन **विविधा खंड** में सम्मिलित किया गया है। साहित्यिक अभिरुचि को समर्पित **लालित्य खंड** में स्वरचित कविताएँ, लेख, निबंध एवं अन्य रचनात्मक कृतियों को स्थान दिया गया है। इस प्रकार 'तरुचिंतन' न केवल राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार का सशक्त माध्यम है, बल्कि यह ज्ञान, विज्ञान और साहित्य के समन्वय से युक्त एक समृद्ध वार्षिक प्रकाशन के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करता है।

वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' के इस अंक को उत्कृष्ट रूप में संकलित, संपादित एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने हेतु मैं डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) तथा राजभाषा प्रकोष्ठ के समस्त सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ। साथ ही, इस अंक में अपनी ज्ञानवर्धक, शोधपरक एवं सृजनात्मक रचनाओं के माध्यम से योगदान देने वाले सभी लेखकों के प्रति मैं अपना आभार एवं शुभेच्छाएँ प्रकट करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'तरुचिंतन' पत्रिका का यह अंक पाठकों के लिए मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञानवर्धन का सशक्त माध्यम सिद्ध होगा।

डॉ. सुधीर कुमार

डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक
(मीडिया एवं विस्तार)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

सम्पादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्त संस्था है, जो वानिकी से संबंधित अनुसंधान, शिक्षा तथा तकनीकी सेवाओं के विकास और उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए निरंतर कार्यरत है। परिषद् का प्रमुख उद्देश्य वानिकी अनुसंधान गतिविधियों का आयोजन एवं समन्वय करना, वन शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना तथा वैज्ञानिक परामर्श, रणनीतिक एवं नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त, परिषद् प्रासंगिक तकनीकों एवं प्रौद्योगिकियों के विकास, विस्तार एवं जन–जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से वन आधारित समुदायों को समर्थन प्रदान करती है, ताकि राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप वानिकी अनुसंधान को सुदृढ़ किया जा सके। परिषद् के वैज्ञानिक, अधिकारी एवं कर्मचारी राजभाषा हिन्दी से संबंधित नीतियों एवं निर्देशों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु भी निरंतर प्रयासरत है। राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए परिषद् में विभिन्न राजभाषा संबंधी गतिविधियों का आयोजन किया जाता है।

इसी क्रम में, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपने विचार एवं भाव हिन्दी में अभिव्यक्त करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए 'तरुचिंतन' पत्रिका का नियमित प्रकाशन किया जा रहा है, जो हिन्दी भाषा के संवर्धन एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनकर उभर रही है। वार्षिक गृह पत्रिका 'तरुचिन्तन' न केवल वानिकी अनुसंधान की जानकारी को हिंदी के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास करती है, बल्कि हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में भी अपनी अहम भूमिका निभा रही है। इस पत्रिका में परिषद् के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित संस्थानों एवं केन्द्रों में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा प्रेषित लेख, कहानियाँ एवं कविताएँ सम्मिलित की गई हैं जो हिन्दी भाषा के संवर्धन तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच बनकर उभर रही है।

पत्रिका में कुल पाँच खंड हैं। प्रथम खंड 'परिचय' में परिषद् मुख्यालय के विभिन्न निदेशालयों/कार्यालयों के प्रमुख कार्यों एवं गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। राजभाषा खंड में वर्ष के दौरान आयोजित राजभाषाई गतिविधियों के बारे में सचित्र जानकारी, वानिकी खंड में पर्यावरण, वन तथा वनस्पतियों से संबंधित 12 लेख, विविधा खंड के अंतर्गत विभिन्न विषयों पर 7 ज्ञानवर्धक लेख तथा पत्रिका के अंतिम खंड लालित्य में कुल 7 मौलिक रचनाएं सम्मिलित की गई हैं।

मुझे आशा है कि 'तरुचिन्तन' का यह अंक आपके ज्ञानवर्धन के साथ–साथ हिन्दी की रचनात्मक दृष्टि को और अधिक समृद्ध करने में सहायक सिद्ध होगा तथा पूर्व अंकों की भाँति आपको अवश्य पसंद आएगा। पत्रिका को और अधिक उपयोगी, सार्थक एवं प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से मैं सभी पाठकों से विनम्र आग्रह करती हूँ कि वे अपने बहुमूल्य सुझाव एवं विचार हमें अवगत कराएँ। आपका मार्गदर्शन और सहयोग ही हमारे लिए निरंतर प्रेरणा का स्रोत है। इसके लिए मैं समस्त पाठकों तथा लेखकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

गीता जोशी

डॉ. गीता जोशी

तरुचिन्तन
2026

विषय सूची

क्र.सं. | पृ.सं.

संदेश

I. संरक्षक की कलम से III

ii. प्रधान संपादक की कलम से V

iii. संपादक की कलम से VII

परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद 01

1. प्रशासन निदेशालय 02
2. अनुसंधान निदेशालय 03
3. शिक्षा निदेशालय 04
4. विस्तार निदेशालय 05
5. निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) 06
6. सचिव कार्यालय 08

राजभाषा

1. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की राजभाषा गतिविधियाँ 11
2. भा.वा.अ.शि.प.– शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियाँ 13
3. भा.वा.अ.शि.प.– वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ 14
4. भा.वा.अ.शि.प.– हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियाँ 15
5. भा.वा.अ.शि.प.– वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की राजभाषा गतिविधियाँ 16
6. भा.वा.अ.शि.प.– वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर की राजभाषा गतिविधियाँ 17
7. भा.वा.अ.शि.प.– वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियाँ 18
8. भा.वा.अ.शि.प.– काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु की राजभाषा गतिविधियाँ 19
9. भा.वा.अ.शि.प.– उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियाँ 20
10. भा.वा.अ.शि.प.– वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ 21

वानिकी

1. उत्तर–पश्चिमी हिमालय में पायी जाने वाली विभिन्न *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों का संरक्षण व इनका परिदृश्य आनुवंशिकी अध्ययन 23

– डॉ. विनोद कुमार

2. *ओलिया फेरुजीनिया* रॉयल (कहू) : एक बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति 29

–डॉ. प्रवीन रावत, डॉ. किरण सोनी, डॉ. श्रेया चौहान एवं डॉ. कपूर

3. *'खोरिका सोपा'* अथवा *मैगनोलिया गुस्तावी* किंग – गंभीर रूप से लुप्तप्राय असम की महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजातिः संक्षिप्त परिचय और पुनर्प्राप्ति हेतु अनुसंधान 33

–श्रीमती इलोरा दत्त बोरा एवं श्री अंकुर ज्योति सईकीया

4. दुर्लभ और लुप्तप्राय वन प्रजातियों के लिए पात्रे संरक्षण तकनीक 35

–श्रीमती रेखा माहातो एवं श्रीमती बेबीजा एल. सिंघा

5. पाटलाः एक महत्वपूर्ण दशमूल औषधीय वृक्ष 37

–श्री एल.आर. पण्डा, श्री सचिन कुमार,
श्री पुष्पेन्द्र सिंह, श्री रोहन सोलंकी एवं डॉ. माला राठौर

6. पूर्वोत्तर भारत में बाँस की कोपलों पर जलवायु विविधता का प्रभावः रूपात्मक और जैव रासायनिक अध्ययन 39

–श्री सोनकेश्वर शर्मा एवं कु. परिशमिता हजारिका

7. बहुउपयोगी चमत्कारी वृक्षः मोरिंगा 43

–डॉ. प्रतिमा पटेल

8. शहतूत बागान में हानिकारक पीड़कों का प्रकोप एवं उनका नियंत्रण 46

–डॉ. सहदेव चौहान एवं डॉ. अरविंद कुमार

9. अश्वगंधा (*विथानिया सोम्नीफेरा*): एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा 52

–डॉ. शिव पाल एवं डॉ. स्वर्ण लता

10. पुनर्वासित कोयला खनन क्षेत्रों में वनीकरण के माध्यम से कार्बन पृथक्करण व पर्यावरण सुधार 54

–श्री चन्द्र शर्मा, डॉ.ए.एन. सिंह एवं श्री अभिषेक खन्ना

11. उत्तराखण्ड के वनों की एक प्रमुख खरपतवार *एजरेटिना एडेनोफोरा* का जैविक नियंत्रण तंत्र 57

–डॉ. विजय प्रकाश पाण्डेय, श्री दीपक कुमार महन्ता एवं डॉ. अरुण प्रताप सिंह

12. *टूना साइनेंसिसः* महत्व, बीज भंडारण, नर्सरी तकनीक और कीट एवं रोग प्रबंधन 60

–डॉ. मनीषा थपलियाल, डॉ. नमिता एन.के. एवं सुश्री दीपिका

विविधा

1. समाजिक वानिकी के माध्यम से असम के ग्रामीण लोगों के आर्थिक उत्थान की संभावना 63

–श्रीमती रीताश्री खनिकर

2. संसदीय राजभाषा समिति निरीक्षणः तैयारी और सावधानियाँ 64

–श्री शंकर शर्मा

3. खाने योग्य बांस (*डेन्ड्रोकैलमस एस्पर*) 65

–श्री मनोज पूसाम, डॉ. फातिमा शिरीन एवं डॉ. नासिर मोहम्मद

4. दिहिंग पटकाईः उत्तर–पूर्व भारत के वर्षावन का पारिस्थितिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अध्ययन 67

–सुश्री पूजा दासगुप्ता एवं डॉ. ध्रुब ज्योति दास

5. *इलिशियम ग्रिफिथी*: पूर्वोत्तर भारत की एक लुप्तप्राय प्रजाति 69

–डॉ. मिताली मेहता

6. जामुन खुखरी (*फ्लेबोपस पोर्टेंटोसस*) 72

–श्री रविशंकर प्रसाद

7. हिमाचल प्रदेश के कुछ महम्वपूर्ण *ज़िन्जिबेरेसी* पौधों का पारंपरिक ज्ञान 73

–सुश्री मीनाक्षी, श्री ब्रिजभुषण एवं श्री वनीत जिष्टू

लालित्य

1. एआई वरदान या अभिशाप, फैंसला आपका **–श्री अभिषेक खन्ना** 77

2. 'हे गंगा' **–श्री सौरभ दुबे** 78

3. किसान का संघर्षपूर्ण जीवन **–श्री उमाशंकर** 79

4. वृक्ष की चित्कार **–श्री नवनीत गुप्ता** 80

5. घर **–श्रीमती सीमा ठाकुर** 81

6. प्रगति का प्रकृति पथ **–श्रीमती सुधा पाण्डेय** 82

7. शिकारी देवी व कमरु नाग की पवित्र यात्रा का वृतांत **–श्री दिनेश कुमार धीमान** 83

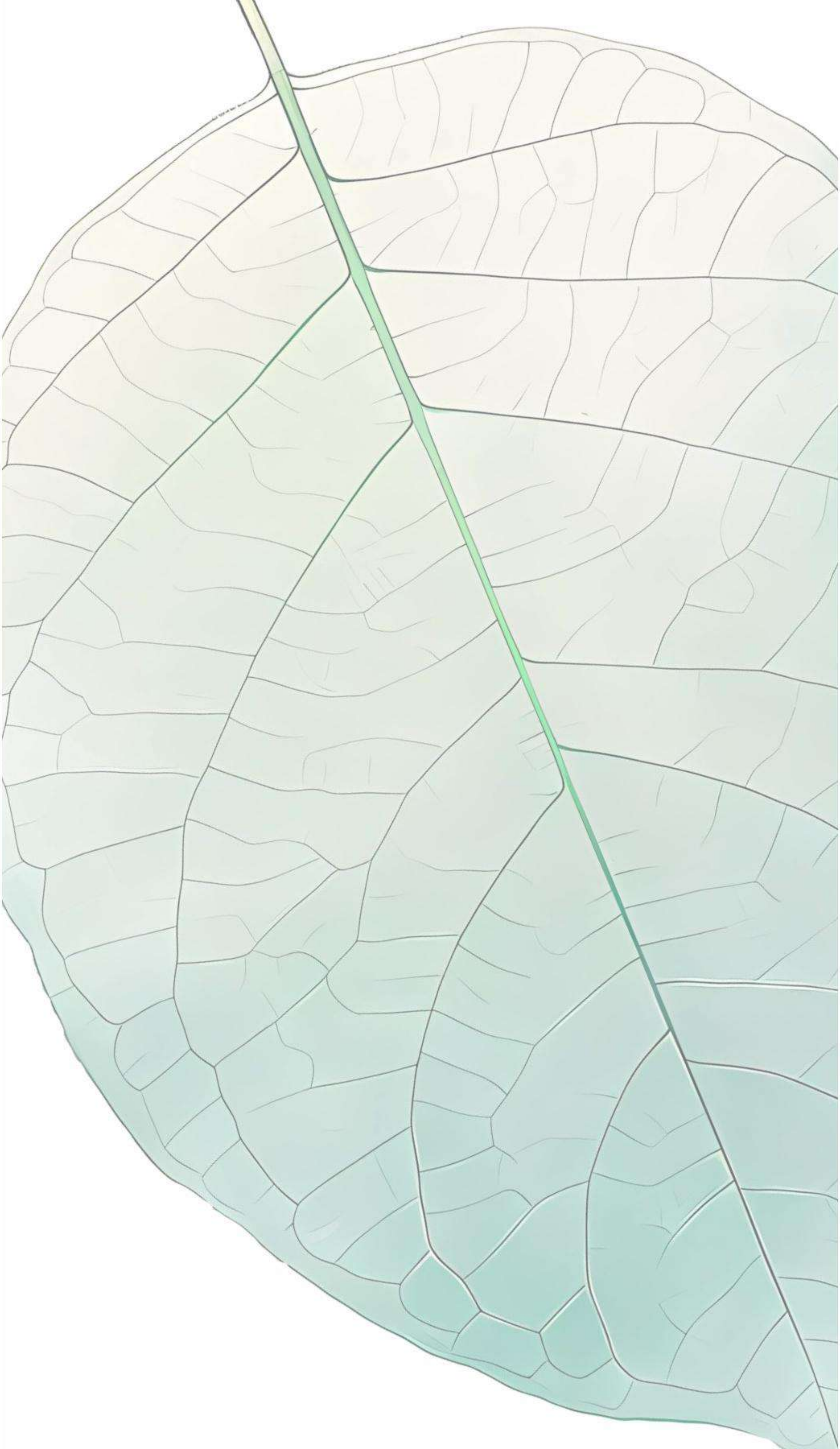

परिचय

1. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

वानिकी अनुसंधान की यात्रा की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वैज्ञानिक वानिकी के आगमन और 1878 में देहरादून में वन विद्यालय की स्थापना के साथ हुई थी। बाद में देश में वानिकी अनुसंधान को सुदृढ़ एवं संगठित रूप प्रदान करने के उद्देश्य से 5 जून 1906 को तत्कालीन शासन द्वारा *इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट* की स्थापना की गई। देश की वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार संबंधी आवश्यकताओं तथा पर्यावरणीय हितों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1986 में एक छत्र संगठन के रूप में **भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.)** की स्थापना की गई। परिषद् को 1 जून 1991 को तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था का दर्जा प्रदान किया गया तथा इसे सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत किया गया। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की आम सभा इसकी सर्वोच्च प्राधिकारी है, जिसके अध्यक्ष भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के केंद्रीय मंत्री होते हैं। परिषद् के महानिदेशक, परिषद् सोसाइटी के मुख्य कार्यकारी होते हैं।

भा.वा.अ.शि.प. का मुख्यालय उत्तराखंड राज्य की राजधानी देहरादून में स्थित है। परिषद् राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली की शीर्ष निकाय है तथा वानिकी अनुसंधान, वानिकी शिक्षा एवं विस्तार कार्यों के प्रति प्रतिबद्ध है। परिषद् के अंतर्गत देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित 9 क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान तथा 5 केंद्र कार्यरत हैं। प्रत्येक संस्थान का अपना विशिष्ट ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्व है तथा ये संस्थान अपने–अपने क्षेत्र की वानिकी परिस्थितियों के अनुरूप अनुसंधान कार्यों में दक्षता रखते हैं। ये सभी संस्थान भा.वा.अ.शि.प. के छत्र तले अपने क्षेत्राधिकार में वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार गतिविधियों का प्रभावी रूप से संचालन एवं प्रबंधन कर रहे हैं। परिषद् के अंतर्गत अनुसंधान संस्थान हैं–

1. भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून
2. भा.वा.अ.शि.प.–शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
3. भा.वा.अ.शि.प.–उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर
4. भा.व.आ.शि.प.–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला
5. भा.वा.अ.शि.प.–वन उत्पादकता संस्थान, रांची
6. भा.वा.अ.शि.प.–वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन

संस्थान, कोयम्बटूर

7. भा.वा.अ.शि.प.–काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू
8. भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट
9. भा.वा.अ.शि.प.–वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद

परिषद् के अंतर्गत अनुसंधान केंद्र हैं:

1. भा.वा.अ.शि.प.– कौशल विकास केंद्र, छिंदवाड़ा
2. भा.वा.अ.शि.प.– बांस एवं बेंत केंद्र, आइजॉल
3. भा.वा.अ.शि.प.– पारि–पुनर्स्थापना केंद्र, प्रयागराज
4. भा.वा.अ.शि.प.– आजीविका विस्तार केंद्र, अगरतला
5. भा.वा.अ.शि.प.– तटीय पारितंत्र केंद्र, विशाखापत्तनम

संकल्पना

वैज्ञानिक अनुसंधान, शिक्षा एवं नवाचार के माध्यम से देश के वन संसाधनों का संरक्षण, संवर्धन एवं सतत प्रबंधन सुनिश्चित कर पारिस्थितिक संतुलन, जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन तथा राष्ट्रीय विकास में वानिकी क्षेत्र का प्रभावी योगदान स्थापित करना।

लक्ष्य

वानिकी एवं संबद्ध क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान और शिक्षा को प्रोत्साहित करना; आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान, तकनीकियों एवं श्रेष्ठ कार्यप्रणालियों का विकास एवं प्रसार करना; वन उत्पादकता एवं जैवविविधता संरक्षण को सुदृढ़ करना; वन आधारित आजीविकाओं एवं ग्रामीण विकास में योगदान देना; तथा नीति निर्माण एवं राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के निर्वहन हेतु वैज्ञानिक परामर्श एवं तकनीकी सहयोग प्रदान करना।

परिषद् के मुख्यालय में अनुसंधान एवं परियोजनाओं से संबंधित कार्यों को सुचारू रूप से परिचालित करने हेतु निदेशालयों की स्थापना की गयी है। इन निदेशालयों के प्रमुख उप महानिदेशक होते हैं जो संबंधित विषयों के बारे में महानिदेशक भा.वा.अ.शि.पि. को सलाह प्रदान करते हैं। मुख्यालय स्थित विभिन्न निदेशालयों का परिचय इस प्रकार है।

प्रशासन निदेशालय

प्रशासन निदेशालय परिषद् के बजट, व्यय संकलन, वस्तु एवं सेवाओं की अधिप्राप्ति तथा पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के समक्ष परिषद् की मांगों से संबंधित कार्यों का संचालन करता है। इसके साथ–साथ यह भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के सामान्य प्रशासन, सूचना प्रौद्योगिकी, अवसंरचना के रखरखाव, आईटी सेवाओं के नियोजन एवं संस्थान के लेखा संबंधी कार्यों की देखरेख भी करता है।

निदेशालय सामान्य प्रशासन एवं वित्त, सूचना प्रौद्योगिकी तथा वानिकी सांख्यिकी–इन तीन प्रशासनिक प्रभागों के माध्यम से कार्य करता है। इसके अंतर्गत आहरण एवं संवितरण, बजट, सामान्य प्रशासन एवं निर्माण, अधिप्राप्ति, भंडार, वाहन रखरखाव तथा वन विज्ञान भवन, नई दिल्ली के पर्यवेक्षण जैसे प्रमुख कार्य संपादित किए जाते हैं। इस प्रकार प्रशासन निदेशालय परिषद् के सुचारु प्रशासन, वित्तीय प्रबंधन एवं आधारभूत सुविधाओं के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **सूचना एवं प्रौद्योगिकी प्रभागः**

सूचना एवं प्रौद्योगिकी प्रभाग का मुख्य कार्य परिषद में आईटी से संबंधित सभी कार्यों का प्रबंधन और संचालन करना है, जैसे : कंप्यूटर, नेटवर्क और इंटरनेट सुविधाओं का संचालन व रखरखाव, सॉफ्टवेयर, वेबसाइट और ई–गवर्नेंस प्रणालियों का विकास व प्रबंधन, डेटा सुरक्षा, सर्वर और साइबर सुरक्षा सुनिश्चित करना, डिजिटल सूचनाओं का संग्रह, अद्यतन और प्रसारण, कर्मचारियों व प्रभागों/कार्यालयों को तकनीकी सहायता प्रदान करना आदि।

वर्ष के दौरान कार्यालय द्वारा संपादित प्रमुख कार्यः निरंतर के अंतर्गत पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के संस्थानों के शोध कार्य एवं प्रकाशनों के संकलन और साझा करने हेतु एकीकृत पोर्टल विकसित किया गया। परिषद् मुख्यालय तथा इसके संस्थानों में ई–ऑफिस प्रणाली का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन किया गया है। वर्तमान में अधिकतर इलेक्ट्रॉनिक फाइलों का निस्तारण ई–ऑफिस प्रणाली के माध्यम से डिजिटल रूप से किया जा रहा है। ई–एचआरएमएस (इलेक्ट्रॉनिक

मानव संसाधन प्रबंधन प्रणाली) को भी परिषद् एवं इसके संस्थानों में सभी कर्मचारियों के लिए लागू किया गया है। आई. टी. प्रभाग द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सेवाओं का प्रबंधन किया जाता है। वर्ष के दौरान कुल 225 वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सत्र आयोजित किए गए। इसके अतिरिक्त, मुख्यालय के कर्मचारियों के लिए ई–एचआरएमएस के अवकाश मॉड्यूल पर प्रशिक्षण आयोजित किया गया। ई–एचआरएमएस का अवकाश मॉड्यूल 1 जनवरी 2026 से भा.वा.अ.शि.प. में पूर्ण रूप से लागू कर दिया गया है।

- **पेंशन प्रकोष्ठः**

पेंशन प्रकोष्ठ प्रशासन निदेशालय के अंतर्गत कार्यरत है। इस प्रकोष्ठ का मुख्य कार्य सेवानिवृत्त एवं पात्र कर्मचारियों को समय पर पेंशन तथा अन्य पेंशन संबंधी लाभों का निर्धारण एवं भुगतान सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत पेंशन, पारिवारिक पेंशन, ग्रेच्युटी, कम्यूटेशन, एनपीएस संबंधी मामलों का निस्तारण, अभिलेखों का संधारण, पेंशन पुनरीक्षण तथा पेंशनरों की शिकायतों का समाधान किया जाता है।

वर्ष 2025 के दौरान पेंशन प्रकोष्ठ द्वारा 25 कर्मचारियों को राष्ट्रीय पेंशन प्रणाली (एनपीएस) एवं जीआईएनपी योजना के अंतर्गत नामांकित किया गया है। इसी अवधि में जनवरी 2025 से दिसंबर 2025 तक कुल 56 कर्मचारी सेवानिवृत्त हुए, जिनकी पेंशन एवं पेंशन संबंधी लाभों का भुगतान पेंशन प्रकोष्ठ, भा.वा.अ.शि.प. द्वारा किया जा रहा है।

- **वानिकी सांख्यिकी प्रभागः**

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, प्रशासन निदेशालय के अंतर्गत कार्यरत है। इस प्रभाग का प्रमुख कार्य वानिकी से संबंधित सांख्यिकीय आँकड़ों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण करना है।

वर्ष के दौरान प्रभाग द्वारा निम्नलिखित दो परियोजनाओं के पूर्णता प्रतिवेदन सफलतापूर्वक तैयार कर प्रस्तुत किए गए–

1. *"भारत में प्रकाष्ठ, ईंधन काष्ठ एवं चारे की मांग एवं पूर्ति का मूल्यांकन"*
2. *"सकल घरेलू उत्पाद (GDP) तथा पारितंत्र वस्तुओं एवं सेवाओं के भुगतान के संदर्भ में वनों का मूल्यांकन"*

अनुसंधान निदेशालय

अनुसंधान निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (अनुसंधान) होते हैं। वर्ष के दौरान निदेशालय द्वारा विभिन्न संस्थानों के साथ समन्वय स्थापित कर परियोजनाओं की समीक्षा हेतु बैठकों का आयोजन किया गया। परिषद् के अंतर्गत प्रस्तुत अनुसंधान परियोजनाओं में कुल 39 नई परियोजनाएँ, 69 पूर्व से संचालित परियोजनाएँ तथा 28 पूर्ण हो चुकी परियोजनाओं के कार्यवृत्त तैयार कर उन्हें महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. द्वारा अनुमोदित कराया गया। राष्ट्रीय बांस मिशन के अंतर्गत प्रस्तुत वार्षिक कार्य योजना को राष्ट्रीय बांस मिशन द्वारा कृष्णोन्नति योजना के तहत परियोजनाओं हेतु वित्तीय सहायता की स्वीकृति प्राप्त हुई। अनुसंधान निदेशालय से संबंधित लोकसभा एवं राज्यसभा के तारांकित एवं अतारांकित संसदीय प्रश्नों के उत्तर तैयार कर उनका समयबद्ध निस्तारण किया गया। कैम्पा द्वारा वित्तपोषित परियोजनाओं के अंतर्गत संचालित अनुसंधान कार्य पूर्ण किए गए तथा परियोजना पूर्णता प्रतिवेदन भा.वा.अ.शि.प. के संस्थानों द्वारा तैयार कर मंत्रालय को प्रेषित किए जा रहे हैं। निरंतर के अंतर्गत सहयोगी परियोजनाएँ तैयार कर उच्चाधिकार प्राप्त समिति एवं प्रशासनिक बैठकों हेतु प्रस्तुतीकरण एवं आवश्यक सूचनाएँ तैयार कर मंत्रालय को भेजी गईं।

- **जैव विविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभागः**

जैव विविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, अनुसंधान निदेशालय के अंतर्गत कार्यरत है। प्रभाग द्वारा जलवायु परिवर्तन से संबंधित मूल एवं अनुप्रयुक्त वानिकी अनुसंधान का संचालन एवं समन्वय किया जाता है। इसके प्रमुख कार्यक्षेत्रों में वन पारिस्थितिकी प्रणालियों की सुभेद्यता एवं अनुकूलन, वानिकी के माध्यम से जलवायु परिवर्तन शमन, वन आधारित समुदायों पर सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का अध्ययन शामिल है। प्रभाग द्वारा जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन से संबंधित पूर्ण एवं जारी परियोजनाओं के साथ–साथ क्षमता निर्माण कार्यक्रमों का भी संचालन किया जा रहा है। इस प्रभाग के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख परियोजनाओं का संचालन किया जा रहा है–

1. *भारत में राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (NDC) के क्रियान्वयन हेतु वन एवं वृक्ष आवरण का पुनर्स्थापन, संरक्षण एवं संवर्धन*
2. *हरित भारत मिशन (कैम्पा) का तृतीय पक्ष अनुश्रवण*
3. *औषधीय पौधों एवं उनके कच्चे माल की मांग एवं आपूर्ति के आकलन हेतु राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत अध्ययन–सह–सर्वेक्षण*

इसके अतिरिक्त, भारतीय प्लाइबोर्ड एवं पैनल उद्योग महासंघ के सहयोग से भारत में कृषि–वानिकी आधारित कार्बन ऑफसेट परियोजनाओं की कार्यप्रणालियों पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। साथ ही, औषधीय पौधों एवं उनके कच्चे माल की मांग एवं आपूर्ति के आकलन हेतु राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत अध्ययन–सह–सर्वेक्षण, वन परिदृश्य पुनर्स्थापन पर पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण मॉड्यूल का विकास, भू–क्षरण पर परामर्श कार्यशाला तथा वन परिदृश्य पुनर्स्थापन में लैंगिक समानता एवं सामाजिक समावेशन के एकीकरण पर क्षमता निर्माण कार्यशाला का आयोजन अंतर्राष्ट्रीय पर्वतीय विकास केंद्र (ICIMOD), काठमांडू के सहयोग से नई दिल्ली में किया गया।

शिक्षा निदेशालय

शिक्षा निदेशालय मुख्य रूप से वानिकी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में उच्च शैक्षणिक मानकों के लिए देश में वानिकी शिक्षा को बढ़ावा देने, समन्वय करने और सहायता करने, विभिन्न घरेलू एवं विदेशी प्रशिक्षणों का संचालन एवं समन्वयन कर परिषद् में कार्यरत वैज्ञानिकों, तकनीकी, कार्यकारी एवं अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम चलाने, वन, वन्य जीव और पर्यावरण के क्षेत्र में नीति निर्माण करने और नीति निर्माताओं के लिए इनपुट प्रदान करने तथा परिषद के तकनीकी संवर्ग के श्रेणी–III कर्मियों और वैज्ञानिकों की भर्ती और पदोन्नति करने के लिए अधिदेशित है।

वर्ष के दौरान निदेशालय द्वारा सेवाओं में भर्ती, रोस्टर लेखन एवं आरक्षण, पदोन्नति तथा कार्मिकों की वचनबंध और राष्ट्रीय कर्मयोगी जन सेवा कार्यक्रम के चरण–2 के अंतर्गत एक दिवसीय व्यवहारिक (बिहेवियरल) प्रशिक्षण सत्र का आयोजन किया गया।

इसके साथ ही वानिकी पाठ्यक्रमों की मान्यता के तहत उत्तर–पूर्वी क्षेत्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान (NERIST), निरजुली, अरुणाचल प्रदेश के वानिकी विभाग को भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

भा.वा.अ.शि.प. उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार– 2025

गणतंत्र दिवस के अवसर पर निम्नलिखित अधिकारियों को दो श्रेणियों में पुरस्कार प्रदान किए गए–

क्र.सं.	पुरस्कार की श्रेणी	पुरस्कार प्राप्तकर्ता
1.	भा.वा.अ.शि.प. उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार (भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय स्तर)	डॉ. शैलेंद्र कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, अनुसंधान निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प. देहरादून
2.	भा.वा.अ.शि.प. आजीवन उत्कृष्ट सेवा पुरस्कार	श्री नरेंद्र कुमार शारदा, निजी सचिव, भा.वा.अ.शि.प. –शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

गणतंत्र दिवस के अवसर पर महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. पुरस्कार प्रदान करते हुए

विस्तार निदेशालय

विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के संस्थानों और केंद्रों की विभिन्न तरह की विस्तार गतिविधियों का समन्वय और विस्तार कार्यनीतियों का विकास करता है। निदेशालय कृषकों, राज्य वन विभागों, उद्योगों, शिल्पकारों आदि जैसे विभिन्न लक्षित समूहों को उपयुक्त प्रौद्योगिकी पैकेजों एवं प्रतिमानों का हस्तांतरण करने हेतु निरंतर प्रयासरत है। यह निदेशालय मुख्य रूप से भा.वा.अ.शि.प. के अंतर्गत कार्यरत संस्थानों एवं केंद्रों की विभिन्न विस्तार गतिविधियों का समन्वय करता है तथा व्यापक विस्तार रणनीतियों का विकास करता है। इसके अतिरिक्त, निदेशालय पर्यावरण प्रबंधन एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों में परामर्श सेवाएं भी प्रदान करता है।

- **मीडिया एवं विस्तार प्रभागः**

निदेशालय के अंतर्गत मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों की जनसंपर्क एवं प्रसार रणनीतियों का मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण करने में अहम भूमिका निभाता है। इसका प्रमुख दायित्व देशभर में वानिकी अनुसंधान के निष्कर्षों का प्रभावी रूप से विभिन्न हितधारकों तक प्रसार सुनिश्चित करना है। वर्ष 2025 के दौरान इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई, जिसके तहत अनेक राज्यों में आठ वन विज्ञान केंद्रों और दो प्रदर्शन ग्राम स्थापित किए गए। किसानों एवं अन्य हितधारकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कुल ग्यारह वृक्ष उत्पादकता मेला आयोजित किए गए, जिनमें लगभग 2,685 किसानों एवं अन्य हितधारकों ने प्रतिभाग किया। अनुसंधान एवं उद्योग के मध्य सहयोग को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से कोलकाता, रायपुर तथा हैदराबाद में तीन संस्थान–उद्योग बैठकें आयोजित की गई। इसके अतिरिक्त, भा.वा.अ.शि.प. की वार्षिक प्रतिवेदन 2024–25 का प्रकाशन किया गया तथा पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2025–26 के लिए आवश्यक इनपुट तैयार कर प्रस्तुत किए गए।

- **राजभाषा प्रकोष्ठः**

राजभाषा प्रकोष्ठ मुख्य रूप से मीडिया एवं विस्तार प्रभाग के अंतर्गत कार्यरत है। इस प्रकोष्ठ द्वारा राजभाषा से संबंधित समस्त गतिविधियों का क्रियान्वयन, हिंदी पखवाड़ा एवं कार्यशालाओं का आयोजन, राजभाषा पुरस्कारों का वितरण, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकों का नियमित आयोजन, राजभाषा हिंदी के मासिक एवं त्रैमासिक प्रतिवेदनों का संकलन एवं मंत्रालय को प्रेषण, मुख्यालय के कार्यालयों तथा मुख्यालय के अधीनस्थ संस्थानों का राजभाषाई निरीक्षण तथा नराकास तथा मंत्रालय द्वारा आयोजित किए जाने वाले बैठकों में प्रतिभागिता की जाती है।

इसके अतिरिक्त प्रकोष्ठ द्वारा वार्षिक प्रतिवेदन, मासिक पत्रिका वानिकी समाचार और मुख्यालय के निदेशालयों / कार्यालयों द्वारा निर्देशित प्रशासनिक पत्रों, आदेश, निविदा, विज्ञापन आदि दस्तावेजों के हिन्दी अनुवाद का कार्य भी किया जाता है। साथ ही भा.वा.अ.शि.प. की एक वार्षिक गृह पत्रिका 'तरूचिंतन' के सम्पादन का कार्य भी किया जाता है।

- **पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग:**

पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग, विस्तार निदेशालय विगत दो दशकों से अधिक समय से पर्यावरण प्रबंधन, हरित आवरण तथा पर्यावरणीय नीति विश्लेषण के क्षेत्र में वैज्ञानिक परामर्श सेवाएँ प्रदान कर रहा है। प्रभाग ने पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय तथा विभिन्न राज्य सरकारों, राज्य वन विभागों तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की प्रमुख औद्योगिक इकाइयों को पर्यावरणीय स्वीकृति अनुपालन, परियोजना/योजना एवं निर्णय हेतु परामर्श प्रदान किया है।

जनवरी 2025 से दिसंबर 2025 की अवधि में प्रभाग 23 परामर्श परियोजनाओं में संलग्न रहा, जिनके माध्यम से खनन–प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन, पारितंत्रों की बहाली, जैव विविधता संरक्षण तथा पर्यावरणीय संसाधनों के सतत् उपयोग हेतु प्रभावी समाधान प्रस्तुत किए गए। कर्नाटक की लौह अयस्क खादानों के पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन, अरुणाचल प्रदेश की कलाई–II जलविद्युत परियोजना हेतु कैचमेंट एरिया ट्रीटमेंट योजना, कोयला खदानों में वन्यजीव एवं जैव विविधता अध्ययन, तथा नदी एवं तटीय पारितंत्र संरक्षण योजनाएँ प्रभाग के प्रमुख योगदान रहे हैं।

लोह अयरक खदान का निरीक्षण करते हुए भा.वा.अ.शि.प. के अधिकारीगण

इसके अतिरिक्त, उत्तराखंड में प्रस्तावित एवं संचालित जलविद्युत परियोजनाओं के लिए संचयी प्रभाव आकलन एवं वहन क्षमता अध्ययन पर आधारित रिपोर्ट पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय को प्रस्तुत की गई। प्रभाग द्वारा विभिन्न कोयला खदानों के लिए तृतीय–पक्ष पर्यावरणीय एवं वृक्षारोपण निरीक्षण भी किए गए, जिससे पर्यावरणीय अनुपालन, पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व को सुदृढ़ किया गया।

वर्तमान में प्रभाग ने 19 परामर्श परियोजनाएँ सफलतापूर्वक पूर्ण की हैं, 33 नए परामर्श प्रस्ताव तैयार किए हैं तथा 25 नई परामर्श परियोजनाएँ प्राप्त की हैं, जो इसकी बढ़ती विशेषज्ञता एवं राष्ट्रीय स्तर पर पहचान को दर्शाता है। साथ ही, प्रभाग ने क्षमता निर्माण के अंतर्गत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित "पर्यावरणीय प्रभाव आकलन के माध्यम से साक्ष्य – आधारित निर्णय निर्माण" विषय पर पाँच दिवसीय राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का सफल आयोजन कर वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञों की दक्षता संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग)

निदेशालय का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ वानिकी अनुसंधान में सहयोग स्थापित करना, समझौता ज्ञापनों के माध्यम से साझेदारी को सुदृढ़ करना तथा बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के प्रस्तुतीकरण, अनुमोदन, कार्यान्वयन एवं निगरानी का समन्वय करना है। इसके अंतर्गत भा.वा.अ.शि.प. में क्षेत्रवार विशेषज्ञों की पहचान कर विषय एवं प्रणोद क्षेत्र आधारित परियोजनाओं का विकास किया जाता है तथा निधिकरण अभिकरणों के मानकों के अनुरूप परियोजनाओं की प्रगति की निगरानी एवं डेटा का रखरखाव किया जाता है। नवीन पहलों के अंतर्गत अन्य संगठनों के साथ समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर कर सहयोग को और सुदृढ़ किया गया है।

- **बाह्य परियोजनाः**

बाह्य परियोजना प्रभाग निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) के अंतर्गत आता है। प्रभाग का प्रमुख कार्य बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित मुद्दों पर कार्यशाला, संगोष्ठी और सम्मेलन, और जैसे कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना है। वर्ष के दौरान प्रभाग द्वारा निम्न तीन संस्थानों के साथ समझौते ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए: 1. इंडस ट्री क्रफ्ट्स फाउंडेसन, बैंगलोर, 2. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी, देहरादून, 3. राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केंद्र, हैदराबाद।

नवंबर 2025 में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के महानिदेशक की अध्यक्षता में भा.वा.अ.शि.प. के अधिकारियों तथा विश्व बैंक टीम के बीच एक विचार –विमर्श बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक का उद्देश्य भारत के वानिकी क्षेत्र में अनुसंधान की प्राथमिकताओं एवं उभरती चुनौतियों पर चर्चा करना, वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार के क्षेत्र में भा.वा.अ. शि.प. की दृष्टिकोण एवं प्रयासों को साझा करना तथा सहयोग के संभावित क्षेत्रों की पहचान करना था।

- **सतत भूमि प्रबंधन उत्कृष्टता केंद्र**

सतत् भूमि प्रबंधन के प्रति जागरूकता बढ़ाने, वैचारिक रूपरेखाओं के विकास तथा इसे मुख्यधारा में प्रभावी रूप से स्थापित करने के अपने मिशन के अंतर्गत सतत् भूमि प्रबंधन पर उत्कृष्टता केंद्र (CoE-SLM) द्वारा विभिन्न क्षमता–विकास एवं ज्ञान–साझाकरण गतिविधियाँ सफलतापूर्वक संचालित की गईं। प्रमुख गतिविधियों के अंतर्गत दो अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों– "वन क्षरण की निगरानी एवं सततता के लिए सुदूरसंवेदी (रिमोट सेंसिंग) तकनीक" तथा "परिदृश्य संरक्षण हेतु समन्वित दृष्टिकोण: भूमि क्षरण तटस्थता (एलडीएन) एवं कार्बन तटस्थता की प्राप्ति" का आयोजन किया गया। साथ ही, अन्य केंद्रीय सरकारी संस्थानों के सहयोग से पाँच राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के विभिन्न संस्थानों के साथ मिलकर सात क्षेत्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम भी सफलतापूर्वक आयोजित किए गए। केंद्र द्वारा दो महत्वपूर्ण कार्यशालाओं का भी आयोजन किया गया। इनमें भा.वा.अ.शि.प. वन उत्पादकता संस्थान, रांची के सहयोग से "झारखंड में भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने हेतु रोडमैप" पर आयोजित कार्यशाला तथा शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (शु.व.अ.सं.), जोधपुर के सहयोग से मरुस्थलीकरण एवं सूखा से निपटने के लिए विश्व दिवस का राष्ट्रीय स्तर पर सफल आयोजन शामिल है।

प्रशिक्षण कार्यशाला

इसके अतिरिक्त, विभिन्न राज्यों में खनन–प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन हेतु पौधारोपण कार्यक्रम आयोजित किए गए। साथ ही, केंद्र द्वारा देहरादून में मियावाकी पद्धति पर आधारित एक प्रदर्शनात्मक पौधारोपण प्लॉट की स्थापना भी की गई। केंद्र द्वारा आयोजित विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कार्यवृत्त एवं ब्रोशर तैयार कर प्रकाशित किए गए। इसके साथ–साथ, अनेक प्रमुख दस्तावेज भी प्रकाशित किए गए, जिनमें भारत में भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने के मार्गों पर तकनीकी शोध पत्र एवं लेख तथा

सतत् भूमि प्रबंधन पर CoE-SLM न्यूजलेटर का तृतीय खंड शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, केंद्र द्वारा अभिसमय के कार्यान्वयन की समीक्षा हेतु समिति के 23वें सत्र (CRIC–23), जो 1–5 दिसंबर 2025 के दौरान पनामा सिटी में आयोजित हुआ, के लिए भारत का कंट्री पोजीशन नोट तैयार किया गया। इस दस्तावेज में भूमि क्षरण तटस्थता लक्ष्यों, रिपोर्टिंग प्रक्रियाओं, भूमि स्वामित्व, सतत् विकास प्रणालियों (SDS) तथा क्षमता–निर्माण आवश्यकताओं से संबंधित एजेंडा–आधारित तकनीकी इनपुट का समन्वित संकलन प्रस्तुत किया गया। क्षमता निर्माण को और अधिक सुदृढ़ करने के उद्देश्य से, केंद्र द्वारा भारतीय वन सेवा (आईएफएस) परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए दो वैकल्पिक पाठ्यक्रम आयोजित किए गए।

- **ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रमः**

जलवायु परिवर्तन, वर्तमान परिदृश्य में केवल एक पर्यावरणीय विषय न होकर आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा भावी पीढ़ियों के अस्तित्व से जुड़ी एक गंभीर वैश्विक चुनौती बन चुका है। इस संदर्भ में भारत ने सतत् विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण को समान महत्व देते हुए एक संतुलित एवं दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाया है। इसी दृष्टिकोण की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य देश के हरित आवरण में वृद्धि, निम्नीकृत वन भूमि का पारि–पुनर्स्थापन तथा पर्यावरण संरक्षण को एक व्यवहारिक और सहभागितापूर्ण ढाँचे में परिवर्तित करना है। यह कार्यक्रम सार्वजनिक उपक्रमों, निजी क्षेत्र, गैर–सरकारी संगठनों एवं अन्य हितधारकों को स्वैच्छिक रूप से वृक्षारोपण, पारितंत्र पुनर्स्थापन एवं दीर्घकालिक संरक्षण गतिविधियों में भागीदारी हेतु प्रेरित करता है, जिनके माध्यम से ग्रीन क्रेडिट अर्जित किए जाते हैं। कार्यक्रम की औपचारिक अधिसूचना फरवरी 2024 में जारी की गई थी, जिसे अगस्त 2025 में संशोधित किया गया। संशोधित कार्यप्रणाली के अंतर्गत राज्य वन विभागों द्वारा चिह्नित निम्नीकृत वन भूमि का चयन पारदर्शी एवं तकनीकी प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है, जिससे पर्यावरणीय लाभ, भूमि की उपयुक्तता तथा दीर्घकालिक सततता सुनिश्चित हो सके।

ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रम के प्रभावी एवं पारदर्शी क्रियान्वयन हेतु विकसित समर्पित GCP ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से भूमि पंजीकरण, सत्यापन, चयन, भुगतान, प्रगति पर्यवेक्षण एवं ग्रीन क्रेडिट निर्गमन की समस्त प्रक्रियाएँ पूर्णतः डिजिटल रूप से संचालित की जाती हैं। वर्ष 2025–26 के दौरान पोर्टल को संशोधित कार्यप्रणाली के अनुरूप उन्नत किया गया, जिससे इसकी कार्यक्षमता, उपयोगकर्ता अनुभव तथा डेटा सुरक्षा को सुदृढ़ किया गया।

वर्ष 2025–26 में कार्यक्रम के अंतर्गत 17 राज्यों में लगभग 50,277 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले 2,044 निम्नीकृत भूमि खंड पंजीकृत किए गए, जिनमें से 631 भू–खंड (18,229 हेक्टेयर) को सत्यापित कर GCP भूमि संग्रह में सम्मिलित किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की सक्रिय भागीदारी के साथ चयनित भूमि पर न्यूनतम पाँच वर्षों तक पारि–पुनर्स्थापन गतिविधियाँ अनिवार्य की गई हैं तथा 40 प्रतिशत वृक्ष छत्र आवरण प्राप्त होने पर ही ग्रीन क्रेडिट जारी किए जाते हैं। वर्तमान में लगभग 65 लाख पौधों के रोपण का प्रस्ताव है।

ग्रीन क्रेडिट का उपयोग प्रतिपूरक वनीकरण (वन अधिनियम, 1980), कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति, गैर–स्थल–विशिष्ट वृक्षारोपण आवश्यकताओं एवं पर्यावरणीय, सामाजिक एवं नीति संचालन संकेतकों के अंतर्गत किया जा सकता है। अब तक 21 राज्य एवं 700 से अधिक संस्थाएँ GCP पोर्टल से जुड़ चुकी हैं तथा हितधारकों की क्षमता वृद्धि हेतु 65 वेबिनार–सह–प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए गए हैं। समग्र रूप से, ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रम वर्ष 2025–26 में एक सुदृढ़, सहभागी एवं परिणामोन्मुख पर्यावरणीय पहल के रूप में स्थापित हुआ है, जो भारत के सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सचिव कार्यालय

सचिव कार्यालय के प्रमुख सचिव, भा.वा.अ.शि.प. होते हैं। सचिव कार्यालय द्वारा भा.वा.अ.शि.प. की 31 वीं आम बैठक का आयोजन माह अक्टूबर, 2025 में किया गया। कार्यालय द्वारा भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के विभिन्न निदेशालयों के उप महानिदेशकों तथा संस्थानों के निदेशकों क्रमशः उप महानिदेशक (प्रशासन),

उपमहानिदेशक (विस्तार), उप महानिदेशक (शिक्षा), उप महानिदेशक (अनुसंधान) तथा जोधपुर, बेंगलुरू, कोयंबटूर के निदेशकों के चयन हेतु आवश्यक कार्रवाई सम्पन्न किए गए। इसके अतिरिक्त समूह–क एवं ख के अधिकारियों (भारतीय वन सेवा, वैज्ञानिकों एवं तकनीकी संवर्ग के अधिकारियों को छोड़कर) पदोन्नति हेतु विभागीय पदोन्नति समिति का आयोजन कर इस प्रक्रिया को सम्पन्न किया गया। भारत सरकार द्वारा प्रायोजित मिशन मोड योजना के तहत सचिव कार्यालय द्वारा परिषद् (मु.) एवं इसके संस्थानों के समन्वय से सितम्बर, 2024 से मार्च, 2025 तक कुल 56 व अप्रैल, 2025 से वर्तमान तक कुल 38 अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र वितरित किये गए। वर्षभर के दौरान इस कार्यालय द्वारा अधिकारियों/ कर्मचारियों से संबंधित गोपनीय मामलों जैसे शिकायतें, आंतरिक शिकायत, सूचना का अधिकार, लोक शिकायत, वी.आई.पी. संदर्भ, एवं इससे संबंधित मामलों में परिषद् तथा इसके संस्थानों एवं मंत्रालय के मध्य हुए पत्राचार संपादित हुये। कार्यालय द्वारा सेवा से संबंधित मामलों, अधिकारियों / कर्मचारियों के भारत से बाहर जाने हेतु अनापत्ति प्रमाण–पत्र जारी करना अन्य मामलों में अनापत्ति प्रमाण–पत्र से संबंधित पत्र, चल–अचल संपत्ति एवं अन्य प्रशासनिक मामलों से संबंधित पत्राचार भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् / संस्थानों / मंत्रालय के मध्य संपादित किये गये।

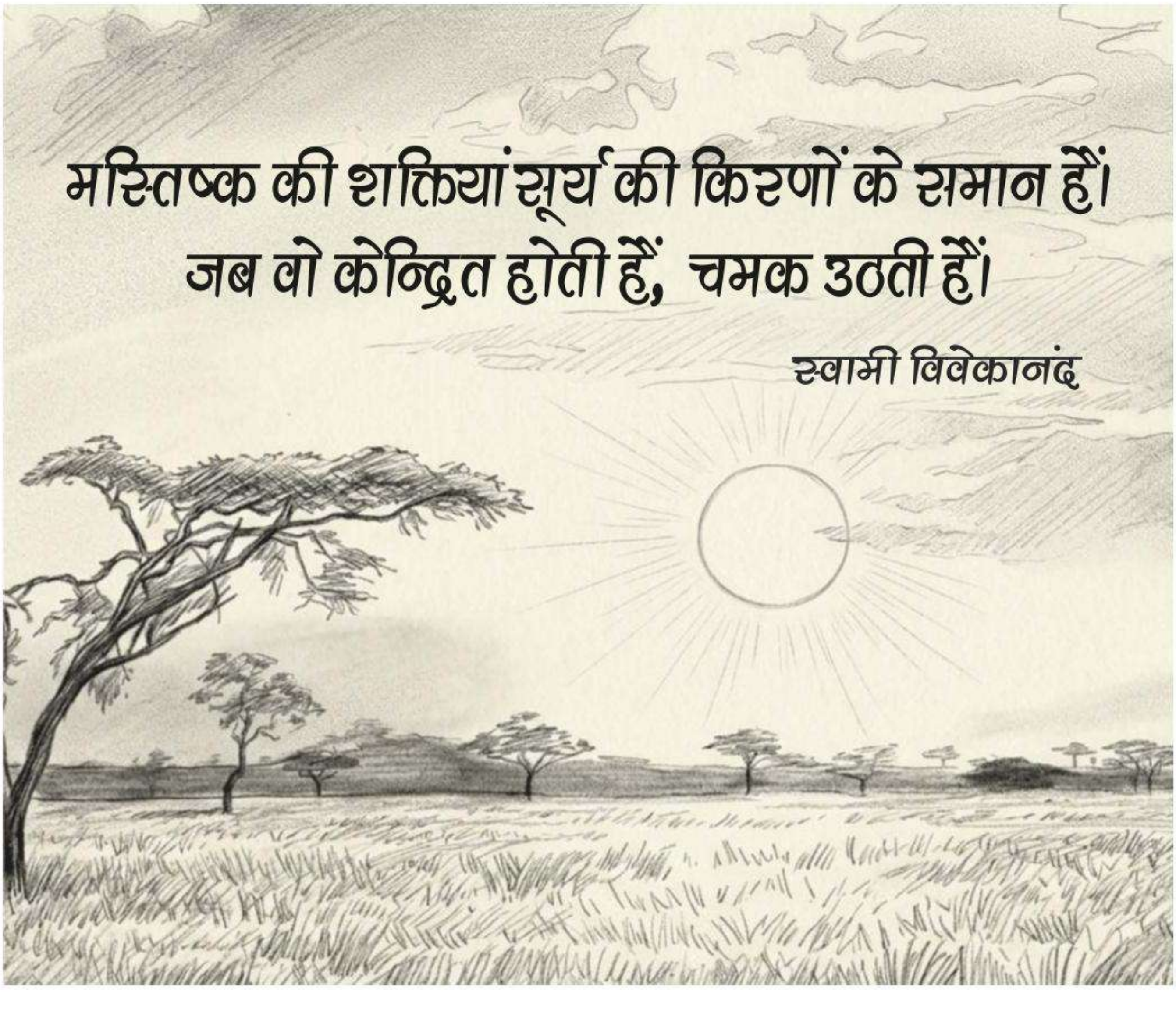

राजभाषा

2. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद (मुख्यालय) की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा जारी राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा संकल्प, राजभाषा नियम 1976 और वार्षिक कार्यक्रम में प्राप्त दिशानिर्देशों का निष्ठापूर्वक अनुपालन किया जाता है। महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. के कुशल नेतृत्व में परिषद् मुख्यालय एवं संस्थानों में नियमित रूप से विभिन्न राजभाषा गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। परिषद् और अधीनस्थ संस्थानों द्वारा आयोजित प्रमुख राजभाषा गतिविधियों पर संक्षिप्त विवरण निम्न है।

परिषद् मुख्यालय में दिनांक 14 से 29 सितंबर 2025 तक हर्षोल्लास के साथ हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। समापन समारोह पर मुख्य अतिथि के रूप अपनी गरिमामयी उपस्थिति से सभा का मान बढ़ाते हुए भा.वा.अ.शि.प. महानिदेशक महोदया कंचन देवी, भा.व.से. ने परिषद् में पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में कार्मिकों की प्रतिभागिता की सराहना की, विशेष रूप से उन्होंने हिंदीतर भाषी कार्मिकों हेतु आयोजित सामान्य राजभाषा ज्ञान प्रतियोगिता की सराहना की। हिन्दी पखवाड़े के आयोजन को सफल बनाने हेतु संचालकों एवं सभी प्रतिभागियों को बधाई दी और आभार व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के 55 विजेताओं को प्रशस्ति पत्र प्रदान किए। हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित कुल 9 प्रतियोगिताएं यथाः टिप्पण एवं आलेखन, निबंध, राजभाषा ज्ञान एवं अनुवाद (हिन्दी भाषी), सामान्य राजभाषा ज्ञान (हिंदीतर भाषी), प्रश्नोत्तरी (क्विज), स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ, हिंदी टंकण, श्रुतलेख (बहुकार्यकर्मी, वाहन चालक एवं समतुल्य), एवं अंत्याक्षरी प्रतियोगिता आयोजित की गईं, जिनमें कुल 126 प्रतिभागियों ने अत्यंत उत्साहपूर्वक प्रतिभाग किया। भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत वर्ष 2024–25 के दौरान अपने शासकीय कार्यों में राजभाषा क्रियान्वयन में समग्र प्रदर्शन हेतु भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के 09 कार्मिकों और 03 संविदाकर्मियों को भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2024–25 के दौरान राजभाषा में उत्कृष्ट कार्य करने वाले मुख्यालय के तीन कार्यालय तथा अधीनस्थ संस्थानों में से 'क' क्षेत्र तथा 'ग' क्षेत्र स्थित 2 संस्थानों को भी राजभाषा शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

राजभाषा हिंदी में लेखन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से परिषद् द्वारा प्रत्येक वर्ष हिंदी पत्रिका 'तरुचिंतन' का प्रकाशन किया जाता है। दिनांक 25 जून 2025 को महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. की अध्यक्षता में आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक के दौरान महानिदेशक महोदया के कर–कमलों से 'तरुचिंतन–2025' का विमोचन एवं लोकार्पण किया गया। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में परिषद् के संस्थानों में कुल 04 अन्य हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा हैं।

दिनांक 19/06/2025 को श्रीमति उर्मिला हरित, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने भा. वा. अ. शि. प. मुख्यालय का राजभाषाई निरीक्षण किया। उन्होंने परिषद् द्वारा किए जा रहे राजभाषा गतिविधियों का लेखा–जोखा लिया।

कार्यालयीन कार्यों में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मुख्यालय तथा संस्थानों में प्रत्येक तिमाही राजभाषा हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। वर्ष 2025 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में "संसदीय राजभाषा समिति की निरीक्षण प्रश्नावली", ''संशोधित तिमाही प्रगति रिपोर्ट", "स्मृति आधारित कंठस्थ अनुवाद टूल", "राजभाषा नियम–अधिनियम", "यूनिकोड हिन्दी टंकण", "ई–ऑफिस में हिन्दी" "अनुवाद" आदि विषयों पर कुल 31 कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। इसके अतिरिक्त, मंत्रालय द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में भी ऑनलाइन माध्यम से सहभागिता की गई।

हिंदी के सुचारु कार्यान्वयन एवं कार्यों की नियमित समीक्षा के लिए मुख्यालय तथा अधीनस्थ संस्थानों में त्रैमासिक रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की जाती हैं। वर्ष 2025 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की कुल 35 बैठकें आयोजित की गईं। इसके साथ ही, वर्ष के दौरान 14–15 सितंबर 2025 को गांधीनगर, गुजरात में आयोजित हिंदी दिवस एवं पंचम अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में भी सहभागिता की गई।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

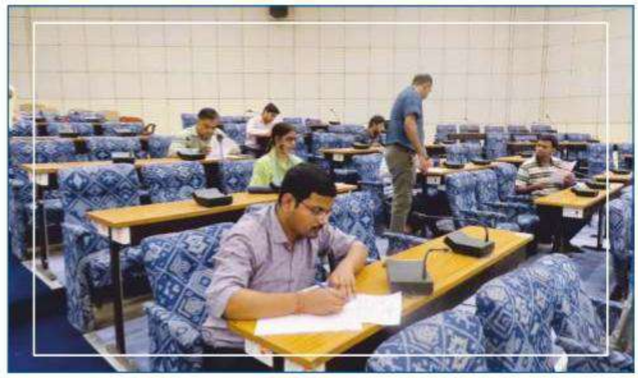

भा.वा.अ.शि.प. – शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प. – शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में हिन्दी पखवाड़ा का शुभारंभ दिनांक 14–09–2025 को गांधीनगर, गुजरात में आयोजित हुए 'हिन्दी दिवस एवं 5वें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' के आरंभ के साथ हुआ। हिन्दी पखवाड़ा 2025 के आयोजन के दौरान संस्थान में क्रमशः हिन्दी टिप्पण तथा आलेखन, हिन्दी टंकण (सामान्य), हिंदी टंकण (यूनिकोड), हिन्दी प्रश्नोत्तरी, हिन्दी निबंध, हिन्दी आशु भाषण, स्व–रचित कविता पाठ प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं।

संस्थान में दिनांक 29–09–2025 को 'हिन्दी पखवाड़ा' का समापन समारोह आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. द्वारा 'हिंदी दिवस' पर जारी संदेश का वाचन भी किया और सम्मानीय अतिथियों द्वारा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाण–पत्र प्रदान कर उनका उत्साह वर्धन किया गया। डॉ. संगीता सिंह, समूह समन्वयक (शोध) ने हिंदी दिवस एवं हिंदी पखवाड़े के आयोजन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि ने हिंदी भाषा की सरलता एवं वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला तथा भारतेन्दु युग से हिंदी की विकास यात्रा पर अपने विचार साझा किए। इसके अतिरिक्त, विशिष्ट अतिथि ने अपने विचार रखते हुए कहा कि सीपीआर का उपयोगी प्रशिक्षण हिंदी भाषा में दिए जाने से सभी को इसे सरलता से समझने में सुविधा होगी। डॉ. तरुण कान्त, वैज्ञानिक–जी ने कहा कि हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा मात्र एक भाषायी आयोजन नहीं, बल्कि हिंदी भाषा का उत्सव है। उन्होंने हिंदी को एकता के सूत्र में बाँधने वाली भाषा बताते हुए संस्थान में अधिक से अधिक कार्यालयी कार्य हिंदी में करने की अपील की।

भा.वा.अ.शि.प.–शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में नियमित तौर पर प्रत्येक तिमाही में संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन किया जाता है तथा नियमित तौर पर हिन्दी कार्यशालाएँ भी आयोजित की जाती हैं। संस्थान को नराकास, जोधपुर द्वारा वर्ष 2024–25 के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन में उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु द्वितीय स्थान प्राप्त करने पर शील्ड व प्रमाण– पत्र प्रदान किया गया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान देहरादून में राजभाषा हिंदी से संबंधित अधिनियमों–नियमों का अनुपालन किया जाता है। यह संस्थान राजकीय कार्यों में हिंदी के क्रियान्वयन तथा प्रचार प्रसार में निरंतर अग्रसर है। मुख्यालय द्वारा प्राप्त दिशा–निर्देशों के अनुसरण में अपने कार्यालयीन कार्यों में हिंदी के क्रियान्वयन में निरंतर प्रयासरत है। इसी क्रम में वर्ष 2025 के दौरान आयोजित राजभाषा से संबंधित प्रमुख गतिविधियाँ निम्न प्रकार हैं:–

कार्यशालाएंः संसदीय राजभाषा समिति को प्रस्तुत की जाने वाली निरीक्षण प्रश्नावली पर एकदिवसीय कार्यशाला, संशोधित त्रैमासिक प्रगति प्रतिवेदन में उचित प्रविष्टि तथा निरीक्षण प्रश्नावली विषय पर एक दिवसीय हिंदी प्रशिक्षण कार्यशाला, राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति एवं वार्षिक कार्यक्रम जैसी विषय पर कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त, संस्थान में केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली में अनुवाद में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे विभिन्न सरकारी मंत्रालयों तथा कार्यालयों के वरिष्ठ एवं कनिष्ठ अनुवाद अधिकारियों के लिए शैक्षणिक भ्रमण कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस दौरान राजभाषा हिंदी की प्रगति तथा सरकारी कामकाज में अनुवाद का महत्व विषय पर विचार–विमर्श कार्यक्रम भी आयोजित किया गया।

हिन्दी पखवाड़ाः संस्थान में दिनांक 14 से 26 सितंबर 2025 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस दौरान हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिंदी श्रुतलेख, हिंदी टंकण,हिंदी भाषा के माध्यम से क्विज प्रतियोगिता तथा हिंदी काव्य पाठ प्रतियोगिताओं का सफल आयोजन किया गया। पखवाड़े के समापन समारोह के दौरान संस्थान की निदेशक डॉ. रेनू सिंह, द्वारा सभी विजेता प्रतिभागियों को नगद पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए। साथ ही दिनांक 14 एवं 15 सितंबर, 2025 को केंद्रीय स्तर पर आयोजित पांचवें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन (गांधीनगर, गुजरात) में संस्थान की ओर से प्रतिभागी के रूप में श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) उपस्थित रहे।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प. – हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.– हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान भारत सरकार द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप लगभग 100% कार्य हिन्दी में निष्पादित कर रहा है। पिछले दो तिमाहियों में राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) व राजभाषा नियम–5 के तहत क, ख एवं ग क्षेत्रों में पत्राचार तथा आदेश इत्यादि द्विभाषीय माध्यम से किए गए। इसके अतिरिक्त कार्यशालाओं एवं हिन्दी पखवाड़े का सफल आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दी में चल रहे कार्यों को और अधिक बढ़ाने तथा इस प्रयास में की जा रहे कार्यों की समीक्षा हेतु प्रत्येक तिमाही कार्यान्वयन समिति की बैठक भी नियमित रूप से की जाती है। संस्थान में कार्यशालों के दौरान प्रतिभागियों को व्याख्यान के माध्यम से राजभाषा अधिनियम और नियम पर प्रकाश डालते हुए संस्थान के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाता है। संस्थान द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में प्रतिभागियों को राजभाषा नियम व अधिनियम पर व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। इन कार्यशालाओं में संस्थान के वैज्ञानिकों, विभागाध्यक्षों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया।

संस्थान में 01.09.2025 से 15.09.2025 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर संस्थान में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु अनेक प्रतियोगिताओं यथा, निबंध लेखन, हिन्दी टंकण, शब्द ज्ञान व हिन्दी व्याकरण, टिप्पण एवं प्रारूपण (नोटिंग–ड्राफ्टिंग), कविता पाठ प्रतियोगीताओं का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा के समापन समारोह के अंतिम चरण में पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को संस्थान के निदेशक, डॉ. संदीप शर्मा द्वारा पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के अंत में डॉ. बालकृष्ण तिवारी, वैज्ञानिक 'सी' एवं प्रभारी अधिकारी ने संस्थान में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन पर अपने विचार प्रकट किए तथा साथ ही उन्होने हिन्दी पखवाड़े के सफल आयोजन हेतु सभी संबन्धित अधिकारियों तथा कर्मचारियों का धन्यवाद प्रेषित किया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए आयोजित विभिन्न गतिविधियों, कार्यशालाओं और बैठकों का विस्तृत विवरण इस प्रकार हैः संस्थान में अप्रैल से दिसम्बर 2025 तक तीन तिमाहियों के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की गईं, जिनमें हिंदी के प्रयोग की स्थिति का निरीक्षण किया गया। दिनांक 8 मई 2025 को पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा "हिंदी में पत्राचार, प्रचार एवं प्रयोग" विषय पर एक हाइब्रिड कार्यशाला आयोजित हुई, जिसमें संस्थान के कई कर्मचारियों ने ऑनलाइन माध्यम से प्रशिक्षण प्राप्त किया। दिनांक 14 से 16 जुलाई 2025 को तीन दिवसीय कार्यशाला "टिप्पण एवं प्रारूपण; मैनुअल और ई–टूल्स का उपयोग" विषय पर आयोजित की गई। कार्यशाला में श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा), ने राजभाषा से जुड़ी नीतियों, नवीन ई–टूल्स जैसे "कंठस्थ" के प्रयोग, तथा टिप्पण एवं प्रारूपण की मानक प्रक्रियाओं पर विस्तार से जानकारी दी। कार्यक्रम में हैदराबाद संस्थान और विशाखापट्टनम स्थित तटीय पारिस्थितिकी तंत्र केंद्र के कर्मचारी ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों माध्यमों से शामिल हुए। इसी दौरान श्री शंकर शर्मा ने हैदराबाद संस्थान का राजभाषाई निरीक्षण भी किया: साथ ही उन्होंने राजभाषा में किए जा रहे प्रयासों की सराहना करते हुए कुछ सुधारात्मक सुझाव भी दिए।

राजभाषा प्रचार के तहत एक द्विभाषी वीडियो वृत्तचित्र "पर्यावास वृक्ष" तैयार किया गया। साथ ही, सात द्विभाषी पुस्तिकाएँ और दस द्विभाषी प्रचार सामग्रियाँ (जैसे ब्रोशर और विस्तार सामग्री) भी प्रकाशित की गईं, जिनका उद्देश्य परियोजनाओं के परिणामों को हिंदी और अंग्रेजी दोनों में प्रस्तुत करना था। 'हिंदी सप्ताह 2025' के दौरान संस्थान में अनेक रचनात्मक और प्रशासनिक प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं, जैसे कविता–पाठ, कंठस्थ–उपकरण प्रतियोगिता, टिप्पणी एवं प्रारूपण प्रतियोगिता आदि। इन कार्यक्रमों के माध्यम से कर्मचारियों में हिंदी के प्रति रुचि, आत्मविश्वास और प्रयोगशीलता को बढ़ाने का प्रयास किया गया। संस्थान द्वारा न केवल प्रशिक्षण और कार्यशालाओं के माध्यम से कर्मचारियों को सशक्त किया जा रहा है, बल्कि विविध प्रतियोगिताओं, प्रकाशनों और तकनीकी उपकरणों के प्रयोग से हिंदी के सहज उपयोग की संस्कृति को भी सुदृढ़ करने में प्रयासरत है।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प – वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.आ.अ.शि.प–वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर राजभाषा के प्रचार–प्रसार में निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में नियमित रुप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठक का आयोजन किया गया। हिंदी के प्रति कर्मचारियों की रुचि बढ़ाने के लिए संस्थान में हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन किया जाता है। अंत में इन फिल्मों के बारे में चर्चा भी की जाती है जिसमें सभी कर्मचारी अपने–अपने विचार हिन्दी में व्यक्त करते है।

इसके अतिरिक्त, संस्थान में "ई–ऑफिस में हिन्दी टिप्पण लेखन" विषय पर दो दिवसीय व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। जिसमें संस्थान के विभिन्न विभागों से करीब 20 कर्मचारियों ने इस प्रशिक्षण में भाग लिया। कार्यशाला में प्रतिभागियों को ई–ऑफिस में हिन्दी टंकण करने के तरीके एवं ई–ऑफिस में दिये गए सामान्य टिप्पणियों का उपयोग किस तरह से करें आदि विषय पर विस्तार से बताया गया।

संस्थान में हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु दिनांक 14 से 29 सितंबर 2025 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। 14–15 सितंबर को राजभाषा विभाग द्वारा गुजरात में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में संस्थान की ओर से श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने प्रतिभाग किया और इसी के साथ संस्थान में भी हिन्दी पखवाड़ा समारोह की शुरुआत की गई। पखवाड़ें के दौरान संस्थान में विभिन्न प्रतियोगिताओं जैसे; हिन्दी प्रश्नोत्तरी, हिन्दी निबंध लेखन, हिन्दी शब्दों का व्यवस्थीकरण आदि का आयोजन किया गया।

डॉ.आर.यशोधा, प्रभारी निदेशक, ने अपने भाषण में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पखवाड़ा हमें यह याद दिलाता है कि हिन्दी हमारी राजभाषा है और हमें इसका सम्मान करना चाहिए। हिन्दी सिर्फ एक भाषा नहीं बल्कि यह हमारे देश की पहचान है। हिन्दी भाषा एक–दूसरे को आपस में जोड़ती है और राष्ट्रीय एकता की भावना को मजबूत करती है। इस पखवाड़े का उद्देश्य यही है कि हम सभी हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करें और कोशिश करें कि हमारी फाइलों, पत्रों आदि में अधिक से अधिक हिन्दी का प्रयोग करें। जिन लोगों के लिए मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उनके लिए यह सीखने और प्रयोग करने का अच्छा अवसर है। आगे हिन्दी पखवाड़े की विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को शुभकमनाएं दी और राष्ट्र गीत के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियाँ

राजभाषा संबंधी सांविधानिक व्यवस्थाओं का अनुपालन एवं संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमुखता देते हुए राजभाषा हिन्दी के समग्र प्रयोग और प्रचार–प्रसार हेतु दिनांक 15 से 30 सितंबर 2025 तक भा.वा.अ.शि.प–वन उत्पादकता संस्थान, रांची में निदेशक एवं राजभाषा कार्यावयन समिति के अध्यक्ष, डॉ. अमित पांडेय के कुशल नेतृत्व में हिंदी पखवाड़ा का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। पखवाड़ा के दौरान संस्थान में टिप्पण एवं प्रारूपण प्रतियोगिता, तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता और स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के कर्मचारियों की उत्कृष्ट प्रतिभागिता रही।

पखवाड़ा के अंतिम दिवस को निदेशक, डॉ. अमित पाण्डेय की अध्यक्षता में हिंदी पखवाड़ा का समापन समारोह आयोजित किया गया। समारोह का संचालन करते हुए नोडल अधिकारी (हिंदी), श्रीमती रूबी सुसाना कुजूर ने सर्वप्रथम संस्थान द्वारा हिंदी में किए जा रहे कार्यकलापों की वर्तमान स्थिति का विस्तारपूर्वक लेखा–जोखा प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्थान द्वारा शत–प्रतिशत हिंदी भाषा में आधिकारिक कार्य के लिए भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय द्वारा पुरस्कृत प्रथम पुरस्कार के विषय में सभी को जानकारी दी।

प्रतियोगिताओं के परिणामों की घोषणा से पूर्व, कार्यक्रम को संबोधित करते हुए निदेशक महोदय डॉ. अमित पाण्डेय ने सर्वप्रथम इस पुरस्कार के लिए संस्थान के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को बधाई देते हुए भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की महानिदेशक, श्रीमती कंचन देवी जी का धन्यवाद किया। संस्थान के समस्त अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा सतत प्रयास एवं आपसी सहयोग द्वारा हिंदी में सरकारी कार्यकलापों और प्रयासों की सराहना की और कहा कि गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूर्ण करने हेतु संस्थान प्रतिबद्ध है और नियमित रूप से प्रयासरत रहेगा। अंततः उन्होंने राजभाषा कार्यन्वयन समिति के सभी सदस्यों की सराहना की एवं आगे भी निरंतर कार्य जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया।

समापन समारोह के अंत में टिप्पण एवं प्रारूपण प्रतियोगिता, तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता और स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिता के विजयी प्रतिभागियों को निदेशक द्वारा पुरस्कार और प्रमाण पत्र वितरण कर प्रोत्साहित किया गया। नोडल अधिकारी (हिंदी) के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हिंदी पखवाड़ा का समापन किया गया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा. वा. अ. शि. प.–काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू राजभाषा की नीतियों के कार्यान्वयन के प्रति समर्पित एवं प्रतिबद्ध है। राजभाषा नीतियों के कार्यान्वयन के लिए समय–समय पर केन्द्र सरकार द्वारा दिशानिर्देश जारी किए जाते हैं तथा संस्थान में उन नीतियों का पूर्ण रूप से अनुपालन किया जाता है। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए संस्थान में समय–समय पर हिन्दी कार्यशाला, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैंठकें तथा अन्य गतिविधियाँ नियमित रूप से आयोजित किए जाते हैं। जिसमें संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारीगण बढ़–चढ़ कर प्रतिभाग करते हैं।

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी संस्थान में 14 से 28 सितंबर 2025 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया गया। उद्‌घाटन समारोह में संस्थान के निदेशक डॉ. शक्ति सिंह चौहान ने संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द को अपने संबोधन में सभी को राजभाषा के प्रति उनके दायित्वों से अवगत कराते हुए यह निवेदन किया कि कार्यालयीन हिंदी को अपनाते हुए अपना अत्यधिक कार्य हिंदी में करें। पखवाड़ा के दौरान शब्दावली, दृश्यों का शब्दों में वर्णन प्रतियोगिता, अनुवाद, टिप्पणी एवं आलेखन, आशु भाषण प्रतियोगिता, निबंध लेखन, वाद–विवाद, टिप्पणी एवं आलेखन (व्यावहारिक कार्य) प्रतियोगिता तथा हिंदी गायन तथा अंत्याक्षरी आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। दिनांक 03 जुलाई 2025 को डॉ. गीता जोशी, स.म.नि., मी.व वि. प्रभाग द्वारा संस्थान का राजभाषाई निरीक्षण किया गया। इस निरीक्षण के दौरान राजभाषा से संबंधित विभिन्न पहलुओं के मद्देनजर राजभाषा की गतिविधियों का प्रस्तुतीकरण किया गया।

दिनांक 21 अगस्त 2025 को कॉफी बोर्ड मुख्यालय, बेंगलूरु में न.रा.का.स. (का. 4) के सरकारी सदस्य कार्यालयों के कार्मिकों को हिंदी के प्रति प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हिंदी भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान की श्रीमती नवीना एस. अवर श्रेणी लिपिक एवं श्रीमती लता नारायण प्रवर श्रेणी लिपिक ने भाग लिया तथा क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किए। इसी क्रम में नराकास के तत्वावधान में दिनांक 29 अक्टूबर 2025 को केन्द्रीय विनिर्माणकारी प्रौद्योगिकी संस्थान, (सीएमटीआई) बेंगलूरु में आयोजित कवि सम्मेलन में प्रतिभाग किया और स्वरचित कविता पाठ किया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियाँ

संघ की राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ भा.वा.अ.शि.प. –उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में वर्ष भर राजभाषा हिंदी के कार्यालयी काम काज को अधीक सुगम बनाने में नई प्रौद्योगिकी के साथ–साथ विभिन्न हिंदी कार्यशालाएँ आयोजित की गई। जो राजभाषा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन पर केन्द्रित होती है। संस्थान द्वारा हिंदी पखवाड़े का शुभारंभ दिनांक 14 सितंबर, 2025 को गांधी नगर, गुजरात में आयोजित पंचम अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में प्रतिभागिता से किया गया। पखवाड़े के दौरान संस्थान के परिसर में राजभाषा उपवन की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य समस्त कर्मचारियों एवं आगंतुक छात्रों और ज्ञान विज्ञान को राजभाषा से सरलता से जोड़ा जा सकें, यह प्रयास किसी वैज्ञानिक संस्थान के लिए पहला सकारात्मक प्रयास सिद्ध होता है। पखवाड़े के दौरान हिंदी पुस्तक मेला का प्रदर्शन किया गया, पुस्तक मेले में गीता प्रेस एवं अन्य प्रकाशकों द्वारा अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तकों की प्रदर्शनी भी लगई गई। पखवाड़े के दौरान कई महत्वपूर्ण विषयों पर विशेष संगोष्ठी का आयोजन किया गया। पखवाड़े के अतंर्गत नौ विशेष प्रतियोगिताऐं आयोजित की गई। पखवाड़े का समापन समारोह 30 सितंबर 2025 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर निदेशक डॉ. नीलू सिंह ने अपने उद्‌बोधन के दौरान राजभाषा अनुभाग के सकारात्मक प्रयासों की प्रसंशा की एवं सबका उत्साहवर्धन किया। निदेशक द्वारा प्रतियोगिता के विजेताओं को उनकी सफलता पर बधाई देते हुए संस्थान में राजभाषा हिंदी के प्रयोग में हो रही उत्तरोत्तर वृद्धी को बनाए रखने का आग्रह किया और भविष्य में भी राजभाषा नीति की अपेक्षाओं अनुरूप निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता पूर्वक प्रयास करते रहने हेतु आशा व्यक्त की। संस्थान द्वारा हिंदी में राजकाज को बढ़ावा देने के लिए राजभाषा उदिषा एवं राजभाषा मंजूषा पुरस्कार भी वितरित किया ।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

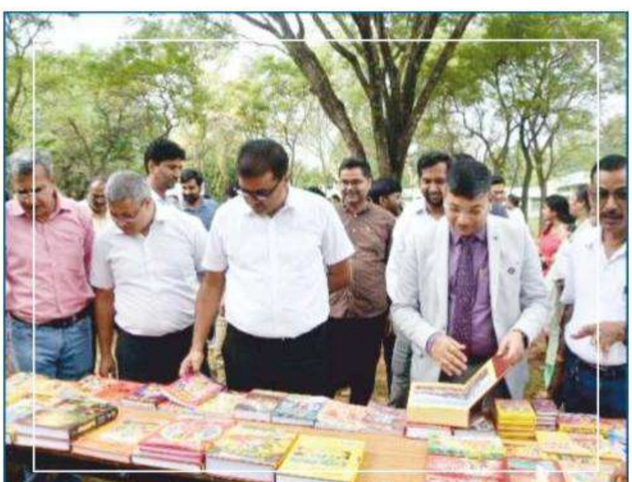

भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए दिनांक 09 सितम्बर से 23 सितम्बर, 2025 तक हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया। दिनांक 25 सितम्बर, 2025 को समापन सत्र आयोजित किया गया जिसमें अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन स्वरूप "स्वतंत्र भारत की राजभाषा–हिन्दी" विषयक लघु वृत्तचित्र दिखाया गया।

संस्थान की हिन्दी–असमिया द्विभाषी वार्षिक ई–पत्रिका वर्षारण्यम्–2024, संस्करण–7 का विमोचन श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के कर कमलों द्वारा किया गया। संस्थान में दिनांक 19.09.2025 को आयोजित वृक्ष उत्पादक मेला में त्रैभाषिक (असमिया, हिन्दी एवं अंग्रेजी) स्मारिका का विमोचन किया गया। संस्थान में त्रैमासिक हिन्दी संवाद–पत्रिका (जुलाई–सितम्बर, 2024; अक्टूबर–दिसम्बर, 2024 तथा जनवरी–मार्च, 2025) का भी प्रकाशन किया गया। दिनांक 20.05.2025 को क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, गुवाहाटी, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट का राजभाषायी निरीक्षण किया गया। जोरहाट शहर में अवस्थित केंद्र सरकार के कार्यालयों के बीच वर्ष 2023–24 के दौरान राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन के बेहतर प्रदर्शन एवं उत्कृष्ट कार्य संपादन के लिए भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को नराकास की 42 वीं बैठक में दिनांक 06 फरवरी, 2025 को प्रथम पुरस्कार के रूप में शील्ड के साथ प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

इसके अतिरिक्त राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित राजभाषा लक्ष्यानुरूप संस्थान की विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें तथा हिन्दी कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

वानिकी

3. उत्तर–पश्चिमी हिमालय में पायी जाने वाली विभिन्न *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों का संरक्षण व इनका परिदृश्य आनुवंशिकी अध्ययन

डॉ. विनोद कुमार
भा.वा.अ.शि.प.-मुख्यालय, देहरादून

परिचय

रोडोडेंड्रोन प्रजाति सबसे शुरुआती वृक्ष समूहों में से एक है, जो पृथ्वी के उत्तरी भाग में लाखों वर्षों से अस्तित्व में हैं। *'रोडोडेंड्रोन'* शब्द दो ग्रीक शब्दों 'रोडो' और 'डेंड्रोन' से आया है जिसका अर्थ है 'गुलाब का पेड़'। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से इनकी मौजूदगी का पता दक्षिण चीन से लगाया जाता है, जहां तीन चीनी प्रांतों युन्नान, सेचुआन और तिब्बत का संगम होता है और इनमें से युन्नान प्रांत को चीन में *रोडोडेंड्रोन* की उत्पत्ति का केंद्र माना गया है। प्रजाति के सबसे पुराने जीवाश्म चट्टानों में पत्तियों के निशान के रूप में पाए गए और ये लगभग 50 मिलियन वर्ष पुराने हैं। इरविंग और हेब्डा, 1993 ने इन्ही *रोडोडेंड्रोन* जीवाश्मों के अवशेषों का चित्रण किया, जो आज के *रोडोडेंड्रोन* से समान विशेषताएं रखते हैं। 16वीं शताब्दी में फ्लेमिश वनस्पतिशास्त्री, *चार्ल्स आईएक्लूस* ने पहली *प्रजाति आर. हिरसुटम* की खोज की। प्रजाति की पहली उपस्थिति का उल्लेख 1753 में कार्ल्स लिनिअस (लिनियस 1753) की पुस्तक *प्रजाति प्लांटारम* में किया गया और तब तक पूरी दुनिया को केवल पाँच ही प्रजातियों का ज्ञान था। सन् 1919 में जॉर्ज फॉरेस्ट द्वारा *"आर. प्रोटिस्टम"* पहली नामित और पहचानी गई प्रजाति थी और यह दुनिया के सबसे ऊंचे और प्राचीन *रोडोडेंड्रोन* पेड़ों में से एक है और जिसे *'रोडोडेंड्रोन* का राजा' कहा जाता है।

उत्तर–पश्चिमी हिमालय में पायी जाने वाली विभिन्न *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियाँ

वितरण और उपयोग – उत्तर पश्चिमी हिमालय

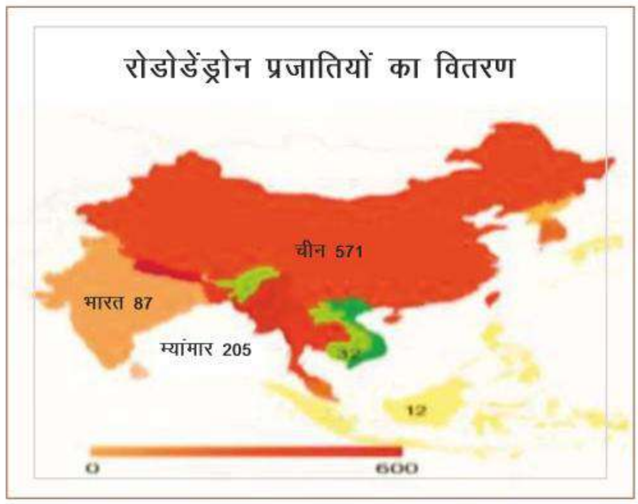

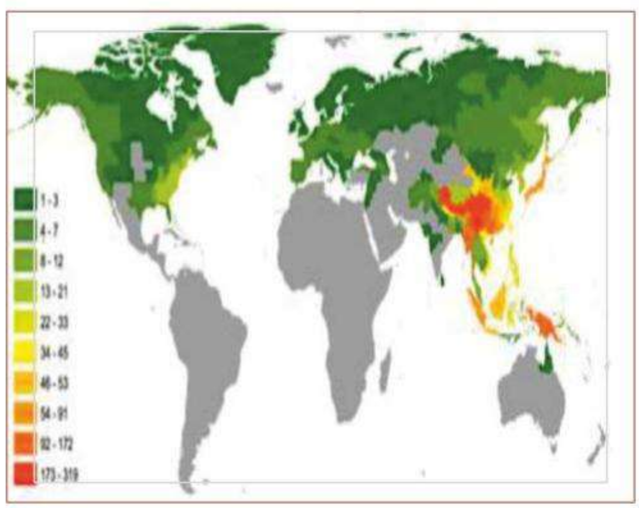

विश्वभर में *रोडोडेंड्रोन* की विभिन्न प्रजातियों का वितरण

व्यापक रूप में *रोडोडेंड्रोन* की विभिन्न प्रजातियों का वितरण

रोडोडेंड्रोन अपनी पारिस्थितिक और आर्थिक उपयोगिता के साथ उच्च ऊंचाई पर वितरित वनस्पति साम्राज्य का सबसे बड़ा और विविध समूह है। दुनिया भर में इसकी 1,200 से अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारतीय हिमालय क्षेत्र में इसकी कुल 87 प्रजातियाँ, 12 उप–प्रजातियाँ और 8 किस्में पाई जाती हैं। इनमें से पश्चिमी हिमालय में *रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन, आर. आर्बोरियम, आर. बार्बेटम, आर. कैम्पानुलैटम, आर. लेपिडोटम* तथा *आर. निवाले,* जबकि बाकी पूर्वी हिमालय में स्थित हैं। *आर. एंथोपोगोन, आर. आर्बोरियम, आर. बार्बेटम, आर. कैम्पानुलैटम, आर. लेपिडोटम* और *आर. निवाले* उत्तराखंड में पायी जाती हैं।

इनके अलावा राज्य में एक नई प्रजाति *रोडोडेंड्रोन रेवती* की भी सूचना मिली है। हिमाचल प्रदेश राज्य में *रोडोडेंड्रोन* की चार प्रमुख प्रजातियाँ – *आर. आर्बोरियम* (बुरांश), *आर. कैम्पानुलैटम* (कश्मीरी पट्टा), *आर. एंथोपोगोन* (तालिसपात्रा) और *आर. लेपिडोटम* (कश्मीरी पट्टा) – स्वाभाविक रूप से वितरित हैं। *रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन, आर. आर्बोरियम, आर. कैम्पानुलैटम* और *आर. लेपिडोटम* प्रजातियाँ केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर में पाई जाती हैं।

उत्तर–पश्चिमी हिमालय में पायी जाने वाली विभिन्न प्रजातियों का वितरण

रोडोडेंड्रोन पौधा 'फाइटोकेमिकल्स का खजाना' माना जाता है, क्योंकि इसके अलग–अलग हिस्सों में पाए जाने वाले विविध फाइटोकेमिकल तत्व सुरक्षात्मक तथा रोग–निवारक गुणों से भरपूर होते *आर. आर्बोरियम* (बुरांश) की कोमल पत्तियां का उपयोग सब्जी के रूप में और सिरदर्द से राहत पाने के लिए किया जाता है। फूलों को एकत्र कर उनका रस तैयार किया जाता है, जिसे रोडोजूस के रूप में बाजार में बेचा जाता है। इसके फूल खाने योग्य होते हैं और पंखुड़ियों से उप–अम्लीय जेली और परिरक्षक बनाए जाते हैं। इनका उपयोग दस्त और पेचिश में भी किया जाता है। बैसाखी (बिशू) त्योहार के दौरान फूलों और पत्तियों को लंबी रस्सियों में पिरो कर घरों और मंदिरों के चारों ओर बांधा जाता है। *आर. कैम्पानुलैटम* की पत्तियां पुरानी गठिया, सिफलिस और कटिस्नायुशूल में उपयोग की जाती हैं। *रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन* के तेल में जीवाणुरोधी एवं सूजनरोधी गुण पाये गए हैं, जिसका पारंपरिक उपयोग त्वचा संक्रमण, खाँसी–फेफड़े की समस्या व सूजन के इलाज में होता है। *रोडोडेंड्रोन लेपिडोटम* प्रजाति की पत्तियों व फूलों का उपयोग पारंपरिक रूप से श्वसन संबंधी रोगों (जैसे खाँसी) और जोड़ों के दर्द के इलाज में होता है। *रोडोडेंड्रोन बार्बेटम* प्रजाति दस्त–डायरिया एवं जुकाम–खाँसी जैसी सामान्य समस्याओं के उपचार में उपयोग लाई है। *रोडोडेंड्रोन निवेम* यह प्रजाति भी अन्य *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों की तरह पाचन संबंधी विकार (जैसे अपच/दस्त) व प्रतिरक्षा–सम्बन्धित लाभ के लिए उपयोगी मानी गई है।

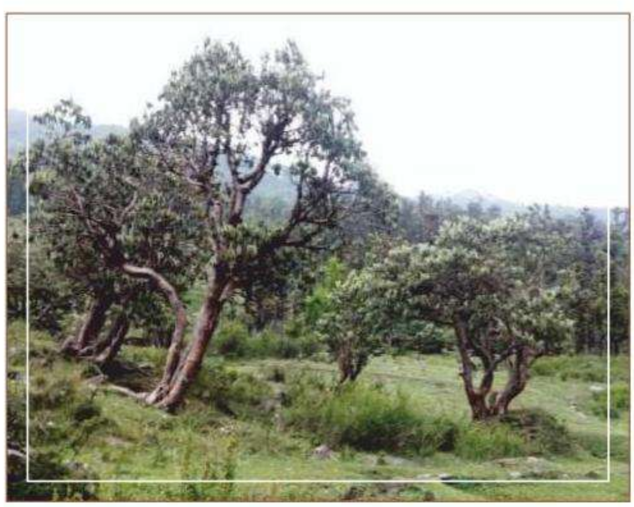

रोडोडेंड्रोन प्रजाति का प्राकृतिक पर्यावास

रोडोडेंड्रोन एक ऐसा पौधा है जिसने लोगों के सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में एक विशेष स्थान हासिल कर लिया है। *आर. आर्बोरेटम* के फूलों को पवित्र माना जाता है और अक्सर मंदिरों और मठों में चढ़ाया जाता है व स्थानीय महिलाएं अपने बालों के जूड़े को *रोडोडेंड्रोन* के फूलों से सजाती हैं। इस प्रजाति के पूरी तरह से खिले फूलों की सौंदर्यात्मक सुंदरता आगंतुकों का ध्यान आकर्षित करती है। भारत में *आर. कैम्पानुलैटम* और *आर. आर्बोरेटम* क्रमशः हिमाचल प्रदेश और नागालैंड के राज्य फूल हैं। *आर. आर्बोरेटम* उत्तराखंड का राज्य वृक्ष है। *आर. एंथोपोगोन* की सुगंधित पत्तियों और फूलों को हिमालयी लोगों द्वारा धूप के प्रयोग में उपयोग किया जाता है, जिससे पूजा–अनुष्ठानों में वातावरण पवित्र और शांति–पूर्ण बनता है। *आर. लेपिडोटम* अपनी गुलाबी–बैंगनी व पीली छटा के कारण पर्वतीय बगीचों में सजावटी वृक्ष के रूप में रोपा जाता है, जिससे प्रकृति–सौन्दर्य बढ़ता है और पर्वतीय माहौल में विश्राम का अनुभव मिलता है। *आर. बार्बेटम* के गहरे लाल फूलों व आकर्षक पौधे संरचना के चलते इसे शो–प्लांट के रूप में माना जाता है, जिससे बगीचें आकर्षक बन जाते हैं। *आर. निवेम* को ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों में विरल प्रजाति के रूप में देखा जाता है और इसके नीले–बैंगनी फूल व रजत तने इसे पर्वतीय सौन्दर्य, प्राकृतिक विरासत एवं गौरव के प्रतीक के रूप में स्थापित करते हैं।

प्रवृत्ति और पर्यावास

रोडोडेंड्रोन प्रजाति अल्पाइन, विभिन्न जलवायु क्षेत्रों, उष्णकटिबंधीय वर्षा वन से लेकर टुंड्रा और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पायी जाती है। *रोडोडेंड्रोन* सभी संभावित आवासों जैसे दलदल, घास के मैदानों, धाराओं के किनारे, पहाड़ों और चोटीयों, चट्टानों, खुले घास के मैदानों और घने इलाकों और नदी की घाटियों पर पायी जाती हैं। बहुत–सी प्रजातियां काई के साथ घनिष्ठ रूप से उगती हैं क्योंकि उनमें पानी की मात्रा बनी रहती है। वृक्षीय प्रजातियाँ उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में चौड़ी पत्ती वाले जंगलों में पाई जाती हैं। *रोडोडेंड्रोन* की अधिकांश प्रजातियां उच्च वर्षा, आर्द्र तापमान, उच्च कार्बनिक, अम्लीय मिट्टी के क्षेत्रों में उगती हैं। इसकी *एपिफाइट्स* प्रजातियाँ काई से ढकी चट्टानों और अन्य झाड़ीदार *एरिकेशियस* प्रजातियों और ऑर्किड से जुड़े पेड़ के तनों पर उगती हैं। जीनस धीमी वृद्धि दर दिखाता है तथा अल्पाइन क्षेत्रों में इसका आकार चटाई जैसे आकार से लेकर 25 मीटर से अधिक की ऊंचाई वाले बड़े पेड़ों तक होता है। अल्पाइन क्षेत्र की प्रजातियाँ सर्दियों में शीत निद्रा में चली जाती हैं और स्थिति अनुकूल होने पर फिर से अंकुरित हो जाती है। इसकी प्रजातियाँ 1000 मीटर से लेकर 5000 मीटर के ऊपर की ऊंचाई तक पायी जाती हैं। विश्व स्तर पर जंगल घट रहे हैं और विभिन्न कारणों से प्रमुख वृक्ष प्रजातियों को हानि हो रही है और इनमें से कई प्रमुख प्रजातियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अन्य प्रजातियों के वितरण और प्रचुरता को प्रभावित करती हैं। इसके अलावा वे पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न कार्यों को भी चलाती हैं। जीनस की विविध प्रजातियां और अनगिनत किस्में हैं लेकिन केवल कुछ की ही जैविक गतिविधियों और उनमें पाये जाने वाले विभिन्न रासायनिक गुणों के लिए जांच की गई है। *रोडोडेंड्रोन* पश्चिमी और पूर्वी हिमालय के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में प्रमुख प्रजाति के रूप में कार्य करते हैं। *रोडोडेंड्रोन* विभिन्न प्रकार के कीड़ों, पक्षियों और स्तनधारियों को आश्रय और भोजन भी प्रदान करते हैं। *रोडोडेंड्रोन* उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करने में भी योगदान करते हैं क्योंकि अधिकांश प्रजातियों में लंबे समय टिकने वाली सदाबहार पत्तियां होती हैं, जो एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व के भंडारण में मदद करती हैं।

खतरे और इसका क्षरण

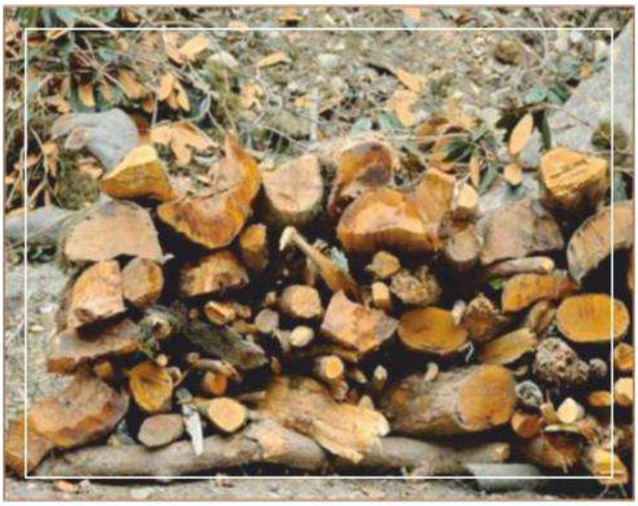

रोडोडेंड्रोन प्रजाति का विभिन्न प्रयोगों के लिए कटान

कई *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियाँ विस्तृत विविधता और व्यापक वितरण के कारण अत्यधिक जैविक और पर्यावरणीय खतरों का सामना कर रही हैं। उदाहरण स्वरूप, उनके प्राकृतिक वास का नुकसान, भूमि उपयोग में बदलाव और निवास स्थान विखंडन इन प्रजातियों के लिए प्रमुख संकट उत्पन्न कर रहे हैं। साथ ही, जलवायु परिवर्तन, तापमान–वृद्धि, वर्षा–पैटर्न में बदलाव और अवांछित/आक्रामक प्रजातियों का प्रकोप भी इनके अस्तित्व के प्रति संकट उत्पन्न कर रहा है। कई अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि इन प्रजातियों की बीज व्यवहार्यता, अंकुरण दर और वनस्पतिक प्रसार की क्षमता में गिरावट आ रही है, जिसका मुख्य कारण उपरोक्त जैविक व पर्यावरणीय दबाव हैं। प्राकृतिक वातावरण में *रोडोडेंड्रोन* की बीज अंकुरण–दर आमतौर पर बहुत कम होती है क्योंकि ये बहुत जल्दी अपनी व्यवहार्यता खो देते हैं और अन्य पर्यावरणीय/जैविक कारक उनकी वृद्धि में बाधा डालते हैं। हरित आवरण के सिकुड़ने के साथ, ये प्रजातियाँ बिगड़े हुए तंत्र के प्रभाव का सामना कर रही हैं, विशेष रूप से हिमालयी क्षेत्र में जहाँ प्राकृतिक आवास बहुत नाजुक है। वर्तमान में भूमि उपयोग में बदलाव, आवास विखंडन एवं अन्य मानवीय गतिविधियों, जैसे वनों की कटाई, सड़क निर्माण, कृषि विस्तार, बांध व खनन– ने इन *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों के आवासों को नुकसान पहुँचाया है। इसी तरह, जलवायु परिवर्तन ने न सिर्फ मौसम–पैटर्न बदल दिए हैं बल्कि बीज की मजबूती, अंकुरण व रोपण योग्य अवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। रोजगार, पर्यटन तथा अन्य गतिविधियाँ निचली ऊँचाई वाली *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों को और अधिक जोखिम में ला रही हैं।

जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन अब एक निर्विवाद वास्तविकता बन चुका है और वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभरा है। उदाहरण स्वरूप, पिछले सौ वर्षों (1906–2005) में वैश्विक औसत सतह तापमान में करीब 0.74°C की वृद्धि देखी गई है। इस वृद्धि में से अधिकांश वृद्धि मानव–जनित ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता में वृद्धि के कारण होने की संभावना है। इस तरह के तापमान परिवर्तन ने पहले ही दुनिया भर के जैविक प्रणालियों को प्रभावित करना आरंभ कर दिया है। प्रजातियों के वितरण में बदलाव, पौधों तथा मिट्टी में कार्बन भंडारण में कमी, और जीवन–इतिहास एवं फेनोलॉजिकल घटनाओं (जैसे परागण का समय) में बदलाव इसके उदाहरण हैं। इन प्रभावों के पीछे केवल तापमान वृद्धि ही नहीं बल्कि अन्य कारक भी सक्रिय हैं, जैसे फेनोलॉजी (जीवन–चक्र घटनाओं) में बदलाव, परागण व बीज प्रसार की प्रक्रियाओं में व्यवधान, तथा प्रतिद्वंदियों व आक्रामक प्रजातियों में परिवर्तन। उदाहरण के लिए, अध्ययन बताते हैं कि जिस तरह से फूलने और परागक की उपस्थिति का समय छंटा हुआ है, उस असमयता ने पौधों की प्रजनन सफलता दर को कम कर दिया है। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन एवं उससे जुड़े अन्य पर्यावरणीय तथा जैव–विविधता कारक मिलकर पारिस्थितिक तंत्रों की क्रियाशीलता और संतुलन को विखंडित कर रहे हैं।

फेनोलॉजी (जीवन–चक्र घटनाओं) का अध्ययन अब केवल प्राकृतिक पैटर्न के दस्तावेजीकरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि जलवायु परिवर्तन के पारिस्थितिक प्रभावों को समझने का प्रमुख साधन बन गया है। पौधों में देखी जाने वाली फेनोलॉजिकल प्रतिक्रियाएँ, जैसे शीघ्र फूल आना, जलवायु परिवर्तन के प्रमुख जैविक संकेतक माने जाते हैं। विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि उत्तर–पश्चिमी हिमालय की अधिकांश *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों में फूल आने का चरण प्रायः मार्च से मई तक होता है, जबकि कुछ प्रजातियाँ दिसंबर/जनवरी में भी खिलती हैं। गैरा के तीन वर्षों के क्षेत्रीय अवलोकनों में फरवरी/मार्च के दौरान लगभग 75% प्रजातियों में पुष्पन देखा गया, जो फेनोलॉजिकल प्रगति की पुष्टि करता है। हर्बेरियम अभिलेखों (1893–2003) और वास्तविक क्षेत्रीय डेटा के तुलनात्मक विश्लेषण से संकेत मिला कि पिछले 100 वर्षों में फूल आने का समय लगभग 88–97 दिन पहले खिसक गया है। रंजीतकर एवं अन्य (2013) ने सर्दियों और वसंत के तापमान में वृद्धि को पुष्पन में इस अग्रगामी प्रवृत्ति का प्रमुख कारण बताया तथा अनुमान लगाया कि *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियाँ ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव में अपनी वितरण सीमा का विस्तार कर सकती हैं। तापमान में यह वृद्धि पौधों के प्रजनन चक्र को प्रभावित कर सकती है, जैसे शीघ्र फूलना, फल का परिपक्व न होना, या कीट संक्रमण बढ़ना, जिससे बीजों की गुणवत्ता और व्यवहार्यता पर प्रतिकूल प्रभाव

पड़ता है। विशेषकर उच्च ऊँचाई वाले क्षेत्रीय *रोडोडेंड्रोन* तापमान के सूक्ष्म बदलावों के प्रति अत्यंत संवेदनशील हैं। अतः वैश्विक ताप वृद्धि और जलवायु परिवर्तन के इन प्रभावों से निपटने हेतु नीतिगत और वैज्ञानिक स्तर पर ठोस उपायों की आवश्यकता है।

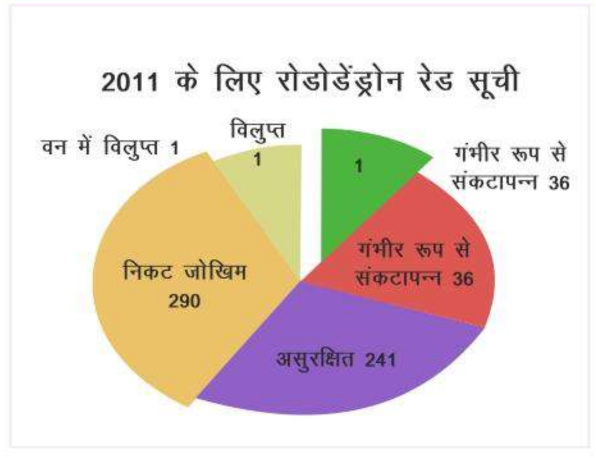

परिदृश्य आनुवंशिकी–

परिदृश्य आनुवंशिकी दो प्रमुख क्षेत्रों–परिदृश्य पारिस्थितिकी और जनसंख्या आनुवंशिकी–का सम्मिलन है, जो जीन प्रवाह और अनुकूलन जैसी सूक्ष्म–विकासवादी प्रक्रियाओं को समझने में मदद करता है। यह अध्ययन यह मापता है कि परिदृश्य की संरचना, विन्यास और मैट्रिक्स गुणवत्ता जीन प्रवाह और स्थानिक आनुवंशिक भिन्नता को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। यह आनुवंशिकी की वह शाखा है जो समय और स्थान के माध्यम से आबादियों में देखी गई वंशानुगत विशेषताओं के वितरण और उनके विकास से संबंधित है। मेन्डल एवं अन्य (2003) के अनुसार, परिदृश्य आनुवंशिकी में दो मुख्य शोध दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं,पहला, यह अध्ययन कि परिदृश्य विशेषताएँ सूक्ष्म–विकासवादी प्रक्रियाओं को कैसे प्रभावित करती हैं, और दूसरा, आनुवंशिक डेटा के माध्यम से पारिस्थितिक प्रक्रियाओं जैसे फैलाव या रोग संचरण का अनुमान लगाना। पारंपरिक जनसंख्या आनुवंशिकी और परिदृश्य आनुवंशिकी के बीच मुख्य अंतर यह है कि परिदृश्य आनुवंशिकी स्पष्ट रूप से परिदृश्य विविधता के जीन प्रवाह और आनुवंशिक भिन्नता पर प्रभावों का परीक्षण करता है। यह क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है और आनुवंशिक विविधता के स्थानिक वितरण को समझने के लिए परिदृश्य पारिस्थितिकी, स्थानिक सांख्यिकी, भूगोल और जनसंख्या आनुवंशिकी की अवधारणाओं को एकीकृत करता है। इस एकीकृत दृष्टिकोण ने फैलाव में आने वाली बाधाओं की पहचान, विविधता के निर्धारक, परिदृश्य परिवर्तनों के प्रभाव, प्रवासी आबादियों की पहचान, स्रोत–सिंक गतिशीलता, रोग और विदेशी प्रजातियों के प्रसार की भविष्यवाणी तथा वर्तमान और ऐतिहासिक परिदृश्यों के बीच आनुवंशिक विन्यास की तुलना जैसे विषयों को स्पष्ट करने में सहायता की है। हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि जिन मॉडलों में परिदृश्य चर शामिल होते हैं, वे आबादियों के बीच आनुवंशिक अंतराल में भिन्नता को समझाने में पारंपरिक अलगाव–दर–दूरी सिद्धांत की तुलना में अधिक प्रभावी हैं। इसलिए, जीन प्रवाह और फैलाव पर परिदृश्य प्रभावों की समझ संरक्षण और प्रबंधन के लिए अत्यंत आवश्यक है, विशेषकर उन प्रजातियों के लिए जिनके फैलाव का प्रत्यक्ष अवलोकन कठिन होता है। यह ज्ञान आवास स्थानों या प्रकृति भंडारों के बीच जीन प्रवाह को सुगम बनाने और जैव विविधता के दीर्घकालिक संरक्षण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस क्षेत्र ने आइसोएंजाइम, [RAPD] AFLP और माइक्रोसैटेलाइट्स जैसे मार्करों के माध्यम से जनसंख्या संरचना का अध्ययन किया और अब नए अनुक्रमण प्रौद्योगिकियों ने जीनोमिक स्तर पर पर्यावरणीय कारकों के साथ संबंध स्थापित करना संभव बना दिया है। जलवायु परिवर्तन और आवास विखंडन जो प्राकृतिक या मानवजनित हो सकते हैं जीन प्रवाह को बाधित कर सकते हैं और प्रजातियों को उन परिदृश्यों में कम अनुकूल बनने के लिए प्रवण कर देते हैं। इसलिए, किसी प्रजाति के दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए उसके विकासवादी इतिहास के साथ–साथ निवासस्थान/परिदृश्य की संरचना, विन्यास और कार्य का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। जीन प्रवाह तथा लाभप्रद उत्परिवर्तन का प्रसार विकास में एक प्रमुख शक्ति है, यदि ऐसा न हो, तो आबादी स्वतंत्र रूप से विकासरत जीन पूल्स बना सकती है। आणविक आनुवंशिकी के साथ–साथ परिदृश्य– आधारित विश्लेषण किसी विशेष प्रजाति में अनुकूल जीन के प्रसार को समझने का सर्वोत्तम साधन हो सकता है। इससे हमें आबादी के संयुक्त विकास की बुनियादी प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलेगी।

प्रसार और परिदृश्य आनुवंशिकी–

भविष्य में जैव विविधता अनुसंधान की सबसे बड़ी चुनौती यह होगी कि हम पारितंत्र में हो रहे बदलावों और उनकी जटिलता को अलग–अलग स्थानिक स्तरों पर समझ सकें। पर्यावरणीय और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को जानने के लिए यह जरूरी है कि हम प्राकृतिक और अर्ध–प्राकृतिक वनस्पतियों के पौधों के समुदायों की गतिशीलता को अच्छी तरह समझें। वर्तमान में, वैज्ञानिकों के सामने यह बड़ी कमी है कि स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर पौधों की आबादी कैसे बदलती है और कौन–से कारक इस बदलाव को नियंत्रित करते हैं।

किसी पौधों के समुदाय की स्थिरता दो प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है – प्रतिरोध और लचीलापन। प्रतिरोध का मतलब है किसी समुदाय की गड़बड़ी या परिवर्तन को झेलने की क्षमता, जबकि लचीलापन का अर्थ है गड़बड़ी के बाद फिर से पहले जैसी स्थिति में लौट आना। यह क्षमता बीज फैलाव, अंकुरण और नए पौधों की वृद्धि जैसी प्रक्रियाओं से आती है। परिक्षेपण पौधों के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि इसके माध्यम से वे अपनी प्रजाति को बनाए रखते हैं, नए क्षेत्रों में फैलते हैं और जीन प्रवाह के जरिए आनुवंशिक विविधता बनाए रखते हैं। पौधों के बीज और पराग कण हवा, पानी, पक्षियों या जानवरों जैसे जैविक और अजैविक वाहकों के जरिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं।

परिदृश्य आनुवंशिकी एक नया क्षेत्र है जो यह समझने में मदद करता है कि किसी क्षेत्र की भौगोलिक संरचना जीन प्रवाह को कैसे प्रभावित करती है। यह अध्ययन जनसंख्या आनुवंशिकी और भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) के संयोजन से किया जाता है। इससे यह पता लगाया जा सकता है कि पहाड़, नदियाँ या जंगल जैसे परिदृश्य–तत्व पौधों या जानवरों के फैलाव और उनकी आबादी की संरचना को कैसे प्रभावित करते हैं। इस क्षेत्र में पौधों पर अभी बहुत कम अध्ययन हुए हैं, क्योंकि पौधों का फैलाव जटिल होता है और यह उनके परागणकर्ताओं, बीजों के वाहकों और पर्यावरणीय स्थितियों पर निर्भर करता है। फिर भी, यह ज्ञान संरक्षण और पारिस्थितिक प्रबंधन के लिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह बताता है कि अलग–अलग क्षेत्रों में पौधों के जीन प्रवाह को कैसे बनाए रखा जा सकता है और जैव विविधता की रक्षा कैसे की जा सकती है।

परिदृश्य आनुवंशिकी पौधों की संरक्षण रणनीतियों से जुड़ी एक अत्यंत उपयोगी विधि है। यह अनुसंधान इस बात का विश्लेषण करता है कि किसी क्षेत्र की भौगोलिक बनावट, जंगल के टुकड़े, सड़कें, खेत–मैदान आदि कैसे पौधों (जैसे *रोडोडेंड्रॉन आर्बोरियमो* अन्य *रोडोडेंड्रॉन* प्रजातियों) के बीच जीन प्रवाह और आनुवंशिक विविधता को प्रभावित कर रही हैं। इसके माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि कौन–से जंगल के टुकड़े अलग–अलग हो गए हैं, कहाँ जीन आदान–प्रदान कम हो रहा है, और कहाँ जैव–विविधता खतरे में है। इस जानकारी के आधार पर हम संरक्षण के लिए इस तरह की रणनीति बना सकते हैं और अलग–अलग आबादियों के बीच जीन प्रवाह को सुगम बनाया जा सकता है। शोध यह भी दिखाते हैं कि *रोडोडेंड्रॉन* प्रजातियों में जीन विविधता कम हो रही है, इसलिए संरक्षण के लिए जरूरी है कि उन आबादियों की पहचान की जाए जहाँ जीन विविधता बनी हुई है और वहाँ उपाय किये जाएँ, जैसे कि जैविक गलियारे बनाए जाएँ ताकि पौधों के बीच फैलाव हो सके, या वनस्पति भंडार स्थापित किये जाएँ जहाँ जीन संरक्षित रहें। इस तरह, परिदृश्य आनुवंशिकी हमें यह समझने में मदद करती है कि कहाँ, कैसे और क्यों इन प्रजातियों का संरक्षण करना चाहिए ताकि वे बदलते पर्यावरण में लंबे समय तक टिक सकें। इसके चलते *रोडोडेंड्रॉन* जैसी संवेदनशील प्रजातियों के दीर्घकालिक अस्तित्व को सुनिश्चित करना संभव हो जाएगा।

ओलिया फेरुजीनिया रॉयल (कहू) : एक बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति

डॉ. प्रवीन रावत, डॉ. किरण सोनी, डॉ. श्रेया चौहान एवं डॉ. कपूर
भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय

ओलिया फेरुजीनिया रॉयल, जिसे स्थानीय भाषा में जंगली जैतून, कहू या बैरबंज कहा जाता है, यह एक, सदाबहार बहुउद्देशीय एवं शून्य अपशिष्ट प्रजाति है। यह ओलिएसी कुल का सदस्य है। उत्तर–पश्चिम हिमालय क्षेत्र में यह वृक्ष गुणवत्तापूर्ण चारा, ईंधन, प्रकाष्ठ सहित अनेक उपयोगी वस्तुओं के रूप में उपयोग किया जाता है, इसमें अनेक औषधीय गुणों की उपलब्धता के साथ–साथ इसके अनेक उल्लेखनीय पारिस्थितिकीय आयाम एवं उपयोगिताएँ भी हैं।

हाल ही के कुछ वर्षों में *ओलिया* प्रजातियों के वैश्विक बाजार में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है, जिसका प्रमुख कारण जैतून तेल की बढ़ती मांग है। विश्वभर में इन प्रजातियों की औषधीय एवं पारिस्थितिक भूमिकाएँ अच्छी तरह से ज्ञात हैं, परन्तु भारतीय हिमालयी क्षेत्र में पाए जाने वाले कहू की पादप रसायन विशेषताओं के संदर्भ में अब भी पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

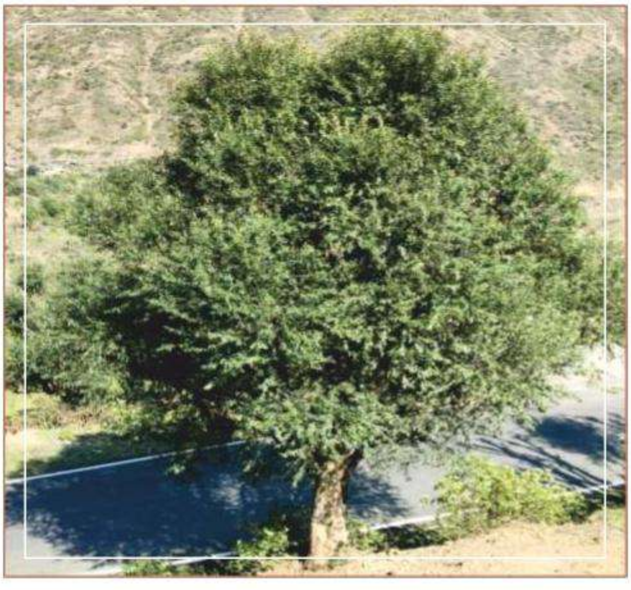

ओलिया फेरुजीनिया का वृक्ष

भारत में *ओलिया* की निम्नलिखित प्रजातियाँ पाई जाती है, जिनमें *ओलिया फेरुजीनिया, ओलिया डायोइका, ओलिया पैनिकुलाटा, ओलिया यूरोपिया* और *ओलिया पॉलिगामा* है। भारत, चीन, नेपाल, और पाकिस्तान जैसे देश भी जैतून की खेती को आर्थिक अवसर के रूप में देख रहे हैं। चीन के यूनान क्षेत्र में इसकी उच्च अनुकूलता, जैव विविधता और जीनोमिक अनुसंधान (जैसे कि क्लोरोप्लास्ट जीनोम अनुक्रमण) ने इसके संरक्षण व सुधार की दिशा में नए आयाम स्थापित किए हैं। भारत में यह प्रजाति मुख्यतः हिमालयी क्षेत्रों में पाई जाती है, जहाँ इसे न्यूनतम इनपुट, जैविक खाद एवं कम उपजाऊ मिट्टी में भी आसानी से उगाया जा सकता है। सामान्यतः *ओलिया फेरुजीनिया* के फलों में लगभग 17 से 23 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है, और इसमें पाए जाने वाले तेल की मांग इन दिनों तेजी से बढ़ रही है, और इसकी आपूर्ति का अधिकांश हिस्सा विदेश से आयात के माध्यम से पूरा किया जाता है। भारत में उपयोग किए जाने वाले जैतून तेलों की आवश्यकता का लगभग 82 प्रतिशत हिस्सा स्पेन से आयात किया गया। जैतून तेल के उत्पादन के लिए विश्वभर में सबसे अधिक *ओलिया यूरोपिया* को उपयोग में लाया जाता है।

उत्तर–पश्चिम हिमालय में उपलब्ध प्रजातियों में *ओलिया फेरुजीनिया* से निकलने वाले तेल की ज्यादातर विशेषताएँ और औषधीय गुण *ओलिया यूरोपिया* से निकलने वाले तेल के ही समकक्ष है, परंतु इस में फल–बीज में पाए जाने वाले तेल की मात्रा से काफी कम है जो कि इसे अनुसन्धान के लिए काफी प्रयुक्त बनाता है। चूँकि यह प्रजाति पहले से ही पश्चिमी–हिमालय क्षेत्र की कठिन परिस्थितियों के लिए अनुकूल है इसलिए इसे तेल उत्पादन के लिए विकसित की गई प्रजातियों के रूट स्टॉक के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

पौधे का विवरण

जैतून अपने प्राकृतिक क्षेत्रों में एक मध्यम आकार के पेड़ के रूप में पाया जाता है, जिसकी ऊँचाई लगभग 15 मीटर तक हो सकती है। वृक्ष का तना बेलनाकार होता है, जिसकी सतह असमान होती है, और गोलाई लगभग 1 से 1.5 मीटर तक हो सकती है। इसकी लकड़ी बाहरी ओर से पीली होती है, जो तने के केंद्र की ओर गहराते हुए गहरे भूरे रंग की हो जाती है। छाल का रंग सामान्यतः भूरा होता है। जैतून के पत्ते सरल तथा अधोवृंत होते हैं, जिनका आकार लैंसोलैट से ओबोवेट तक होता है, जो शीर्ष की ओर क्रमशः पतला होता है। पत्तियों की ऊपरी सतह गहरे हरे रंग की, चिकनी एवं चमकदार होती है, जबकि निचली सतह चांदी के रंग की होती है। जैतून के वृक्ष की जड़ें हल्की, शीघ्र सूखने वाली मिट्टी में जल अवशोषण के लिए अत्यंत लाभकारी होती हैं। यह विशेषता पेड़ को विषम परिस्थितियों में भी पर्याप्त नमी बनाए रखने में सक्षम बनाती है। इस वृक्ष के फूल पुष्पक्रम में विकसित होते हैं, जिन्हें पैनिकल्स कहा जाता है, जो मुख्यतः पत्तियों की धुरी पर स्थित होते हैं। ये फूल छोटे और सफेद से हल्के पीले रंग के होते हैं, जिनमें चार सफेद पंखुड़ियाँ तथा चार संयुक्त हरे बाह्यदल (सेपल्स) होते हैं। ये फूल उभयलिंगी अथवा पुंकेसर युक्त हो सकते हैं।

जैतून का फल एक ड्रूप (गुठलीयुक्त फल) होता है, जिसमें एक या दो बीज पाए जाते हैं। भारतीय परिस्थितियों में जैतून के फल आमतौर पर मध्य सितंबर से अक्टूबर के मध्य तक परिपक्वता तक पहुँचते हैं। विभिन्न स्रोतों से एकत्र किये गये बीजों–फलों का आकार एक दूसरे से भिन्न हो सकता है, जो कि इसमें पाई जाने वाली सघन विविधता का अच्छा संकेत है।

भौगोलिक वितरण

विश्व पटल पर इस प्रजाति का वितरण क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। यह अफ्रीका के भूमध्यसागरीय क्षेत्र, अरब प्रायद्वीप, चीन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और हवाई द्वीप समूह में पाई जाती है। *ओलिया फेरुजीनिया*, भारत में पाई जाने वाली प्रजातियों में से एक है, जो मुख्यतः उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में विद्यमान है। इसका विस्तार जम्मू और कश्मीर से लेकर कुमाऊँ तक 2,400 मीटर की ऊँचाई तक फैला हुआ है।

यह प्रजाति विशेष रूप से सीमांत भूमि तथा कम उपजाऊ मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उग सकती है, जहाँ अधिकांश अन्य प्रजातियाँ जीवित रहने में काफी कठिनाइयों का सामना करती हैं, इसकी यही अनुकूलनशीलता इसे भूमि पुनर्वास और पुनर्वनीकरण प्रयासों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

अन्य जैतून प्रजातियों के साथ तुलना

जैतून के वृक्षों की खेती का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिसमें कई किस्में पाई जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित स्थानीय नामों के कारण इनका वर्गीकरण अक्सर जटिल हो जाता है। वर्गीकरण के प्रमुख मानदंडों में वृक्ष की ऊँचाई, पत्तियों और फलों की विशेषताएँ, तेल की मात्रा, उत्पादकता, कीट प्रतिरोधक क्षमता, मिट्टी एवं जलवायु के प्रति अनुकूलनशीलता तथा डीएनए मार्कर सम्मिलित होते हैं। *ओलिया फेरुजीनिया* में तेल की मात्रा लगभग 17 से 23 प्रतिशत तक होती है, जिसकी गुणवत्ता लगभग *ओलिया यूरोपिया* से काफी मिलती–जुलती है। *ओलिया* वंश (जीनस), ओलिएसी कुल का हिस्सा है, जिसमें उपजाति *ओलिया यूरोपिया* के अंतर्गत 1000 से अधिक किस्मों के साथ वानिकी एवं कृषि कार्य हेतु प्रयुक्त जैतून सम्मिलित हैं। इसे पारिस्थितिकी प्रकारों के एक जटिल समूह के रूप में जाना जाता है। जोशी (2012) के अनुसार, ओलेइक एसिड की मात्रा कृषि संबंधी उपायों या प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से बढ़ाई जा सकती है, जिससे इसके तेल उत्पादन को बेहतर बनाया जा सकता है।

ओलिया फेरुजीनिया के पुष्प

जैतून तेल की निष्कर्षण विधि तथा पोषण संबंधी विशेषताएँ

सोक्सलेट उपकरण का उपयोग करके *ओलिया फेरुजीनिया* के चूर्णित पदार्थ से गर्म निष्कर्षण द्वारा किया जाता है। वहीं, मैसरेशन और परकोलेशन तकनीक के माध्यम से *ओ. फेरुजीनिया* के चूर्णित भाग का गर्म–ठंडा निष्कर्षण किया जाता है। जैतून के तेल के उत्पादन में तेल को पानी से अलग करने और फल को पीसने की दो मुख्य प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप तीन घटक प्राप्त होते हैं; तेल, ठोस अपशिष्ट, एवं अपशिष्ट जल।

जैतून के तेल की पोषण संबंधी विशेषताएँ एवं अद्वितीय गुण मुख्यतः उसमें उपस्थित फैटी एसिड जैसे, पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक, पामिटोलेइक, लिनोलिक और लिनोलेनिक एसिड की सांद्रता पर निर्भर करते हैं। विशेष रूप से, ओलिक एसिड अकेले ही जैतून के तेल का 55 से 75% भाग बनाता है। जंगली ओलिया प्रजातियों में पाए जाने वाले चिकित्सकीय गुणों वाले रासायनिक यौगिकों की वैज्ञानिक समझ मुख्यतः उनके फल, पत्तियों और तेल पर आधारित है। हालांकि, ओलिया प्रजाति का अधिकतर वितरण दूरदराज के क्षेत्रों में होने के कारण, इसके तेल की उपलब्धता और निष्कर्षण प्रक्रिया अत्यंत कठिन हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश जंगली ओलिया प्रजातियों में तेल की निष्कर्षण योग्य मात्रा सीमित होती है, और इनके दूरस्थ स्थानों से नमूनों की कटाई भी चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। इसलिए इस प्रजाति के उच्च गुणवत्ता वाले पौधों का चयन कर, नर्सरी व पौधारोपण तकनीक विकसित कर इसे भविष्य में फार्म व खेती योग्य भूमि में उगाया जा सकता है, जिससे इसके उत्पादन को भविष्य में वाणिज्यिक स्तर पर ले जाया जा सके।

जैतून वृक्ष के महत्व/उपयोग

औषधीय उपयोगः ओलिया की औषधीय क्षमता पेड़ के विभिन्न भागों–जैसे पत्ते, फल और जड़ के चिकित्सीय गुणों के कारण है। वे पॉलीफेनोल और एंटीऑक्सिडेंट सहित अन्य आवश्यक पादप रसायन से भरपूर होते हैं।

- ओलिया की पत्तियों और छाल का इस्तेमाल पारंपरिक रूप से बुखार के इलाज के साथ–साथ दांत दर्द, मुंह के छाले, गले में खराश जैसी स्थितियों में इलाज लिए है।
- पत्तियों से बनी चाय को आमतौर पर हल्के पाचन सहायक के रूप में किया जाता है यह कई स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती है।
- फलों का अचार बनाया जाता है और उन्हें उनके मधुमेह रोधी गुणों के लिए उपयोगी माना जाता है, यह रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। साथ ही उनमें ऐसे यौगिक होते हैं जो मासिक धर्म के दौरान स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं।
- जैतून से निकाले गए तेल में ओलिक एसिड प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो खुजली, टाइफाइड, आंखों में जलन, पीलिया, पित्त, दांत के दर्द और दंत क्षय सहित विभिन्न बीमारियों के उपचार में प्रभावी पाया गया है। तेल खाना पकाने और औषधीय दोनों ही तरह के कामों में उपयोगी है।
- इसका उपयोग गठिया, जोड़ों के दर्द और त्वचा संबंधी बीमारियों के साथ–साथ अन्य स्वास्थ्य समस्याओं के इलाज के लिए किया जाता है।
- पेड़ की जड़ों का उपयोग अस्थमा के इलाज, बिच्छू के डंक से राहत और सिरदर्द को कम करने के लिए किया जाता है। कुल मिलाकर, *ओलिया फेरुजीनिया* को इसके मलेरिया–रोधी, कुष्ठ–रोधी, कसैले और एंटीसेप्टिक गुणों के लिए जाना जाता है, जो विभिन्न स्वास्थ्य उपचारों में इसके अनुप्रयोग में इसके महत्व को रेखांकित करते हैं।

पारंपरिक एवं सांस्कृतिक महत्व/उपयोग

जैतून का वृक्ष एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक एवं आर्थिक भूमिका निभाता है और इसे इसकी विस्तृत अनुकूलन क्षमता व बहुउद्देशीय उपयोगिता के लिए जाना जाता है। परंपरागत रूप से, इसका उपयोग कृषि तथा औषधीय स्रोत के रूप में किया जाता रहा है। हालाँकि, उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में खाद्य तेल के रूप में इसके उपयोग का प्रचलन इतना अधिक लोकप्रिय नहीं है।

फलों का उपयोग एवं महत्वः

इस वृक्ष के फलों से निकाला गया तेल ओलिक एसिड से भरपूर होता है, जो खाना पकाने, सौंदर्य प्रसाधनों और

औषधीय अनुप्रयोगों में अत्यंत उपयोगी है। यह तेल विशेष रूप से गठिया, मलेरिया, तथा विभिन्न त्वचा रोगों के उपचार में लाभकारी माना जाता है।

पत्तियों का उपयोग:

इस वृक्ष की पत्तियों से निकलने वाला रस पशु चिकित्सा देखभाल में व्यावहारिक उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसका उपयोग मवेशियों की आँखों से अवांछित कणों को निकालने हेतु किया जाता है। जानवरों की आँखों के आसपास की सूजन को कम करने के लिए पत्तियों का लेप उपयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त, पत्तियाँ पशु चारे के रूप में भी प्रयुक्त होती हैं।

वाणिज्यिक एवं कृषि उपयोग

परंपरागत रूप से, जैतून के वृक्ष का उपयोग जलाऊ लकड़ी, चारे, और खाद्य फलों के रूप में होता आया है। इसकी लकड़ी मजबूत, भारी एवं लचीली होती है, जिससे इसे अक्सर टर्निंग टूल्स, हल्की कुल्हाड़ियों, फर्नीचर और घरेलू उपयोग की वस्तुएँ जैसे – चलने की छड़ियाँ, कंघी, खिलौने, नक्काशी की सामग्री और नाव निर्माण में उपयोग किया जाता है।

चुनौतियाँ और संरक्षण

ओलिया फेरुजीनिया को इसकी पारिस्थितिकीय अनुकूलन क्षमता, नृवंशविज्ञान संबंधी महत्व और उभरती हुई आर्थिक क्षमता के लिये जाना जाता है, जो की इसे हिमालयी परिस्थितियों में एक प्रमुख प्रजाति बनाता है। हालाँकि, तेल उत्पादन, फैटी एसिड संरचना, और जनसंख्या पारिस्थितिकी पर केंद्रित अनुसंधान की काफी कमी पाई गई है। *ओ. फेरुजीनिया,* जैतून सुधार कार्यक्रमों में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेष रूप से *ओलिया यूरोपिया* के साथ कलम (ग्राफ्टिंग) प्रयोगों में रूट स्टॉक के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है। इन विभिन्न पहलुओं में गहराई से जानकारी प्राप्त करना, न केवल *ओ. फेरुजीनिया* के संरक्षण और सतत् उपयोग, बल्कि कृषि वानिकी और वाणिज्यिक उपयोग में इसकी संपूर्ण क्षमता को प्राप्त करने के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभाव स्वरूप, भविष्य में इसके अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों तथा उत्तरी अक्षांशों की ओर स्थानांतरित होने की संभावना जताई गई है। वर्तमान और अनुमानित भविष्य के जलवायु परिदृश्यों को देखते हुए तथा पूर्वानुमानित उपयुक्त क्षेत्रों की पहचान कर *ओ. फेरुजीनिया* को वृक्षारोपण कार्य में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। यह प्रजाति विशेष रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों तथा क्षरणग्रस्त भूमि के वनीकरण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस प्रकार, इस वृक्ष की बहुउपयोगी क्षमता का सतत् और वैज्ञानिक उपयोग उन क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण दोनों में सहायक सिद्ध हो सकती है, जहाँ यह स्वाभाविक रूप से पनपती है।

निष्कर्ष

ओलिया फेरुजीनिया रॉयल उत्तर–पश्चिमी हिमालय की एक मूल्यवान किंतु कम प्रचलित वृक्ष प्रजाति है, जो महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय, औषधीय तथा आर्थिक लाभ प्रदान करती है। चुनौतीपूर्ण पर्यावरणीय परिस्थितियों में इसकी बहुउद्देशीय उपयोगिता और अनुकूलन क्षमता इसे सतत भूमि प्रबंधन तथा ग्रामीण आजीविका के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है। अपने विविध लाभों के बावजूद, *ओ. फेरुजीनिया* को अब तक वैज्ञानिक शोध में काफी कम दर्ज किया गया है। इसकी फाइटोसोसियोलॉजी (पादप–सामाजिक संरचना), तेल उत्पादन क्षमता में सुधार व इसके नर्सरी व पौधारोपण तकनीक को विकसित करने की आवश्यकता है। इसे पौधारोपण कार्यक्रम में सम्मिलित कर तथा स्थानीय निवासियों को इसकी उपयोगिता तथा संरक्षण के बारे में जागरूकता अभियान इसके संरक्षण में सहायक हो सकते हैं।

'खोरिका सोपा' अथवा *मैगनोलिया गुस्तावी* किंग – गंभीर रूप से लुप्तप्राय असम की महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति: संक्षिप्त परिचय और पुनर्प्राप्ति हेतु अनुसंधान

श्रीमती इलोरा दत्त बोरा एवं श्री अंकुर ज्योति सईकीया
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

प्रस्तावना:

मैग्नोलिएसी आवृतबीजी पादप कुलों में प्राचीनतम परंतु उपयोगी वृक्ष कुल है। विश्व स्तर पर, इस कुल के सदस्य पूर्वी उत्तरी अमेरिका, पूर्वी एशिया और दक्षिण अमेरिका के उष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण क्षेत्रों में विस्तारित होते हैं, जिनकी कुल संख्या 250 है। *मैगनोलिया* इस कुल में सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण जीनस है, जिसकी कुल 247 प्रजातियाँ हैं, जिनमें से लगभग 25 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। भारत के कुल 28 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेशों में से, *मैगनोलिया* वंश 21 राज्यों में वितरित किए जाते हैं। अधिकांश प्रजातियाँ असम (20 प्रजातियाँ) राज्यों से दर्ज की गई है, इसके पश्चात अरुणाचल प्रदेश (16), सिक्किम (14), मेघालय (13), पश्चिम बंगाल (8), मणिपुर, नागालैंड व मिजोरम (6 प्रत्येक), तमिलनाडु (5) तथा त्रिपुरा (4) का स्थान आता हैं। चम्पक अथवा टिटासोपा [*मैगनोलिया चंपाका* (एल.) फिग्लर] सबसे व्यापक रूप से वितरित प्रजाति है जिसे अधिकांश भारतीय राज्यों (16 राज्यों) में देखा गया है। भारतीय *मैगनोलिया* प्रजातियां प्रचुर आर्थिक क्षमता से पूर्ण है। इसका उपयोग सजावटी, औषधीय, पाक कला, लकड़ी और बढ़ईगीरी कार्यों सहित कई क्षेत्रों में किया जाता हैं।

मैगनोलिया गुस्तावी किंग: लोकन का प्रयास

मैगनोलिया गुस्तावी किंग, जिसे स्थानीय रूप से *'खोरिका सोपा''* या *'खोरोकिया सोपा''* के नाम से जाना जाता है, गंभीर रूप से लुप्तप्राय एक सदाबहार पेड़ है जिसकी ऊंचाई 70 – 80 फीट और चौड़ाई 5–6 फीट है। पत्तियाँ सरल, वैकल्पिक, कलियाँ बड़े कुंडलित स्टाइप्यूल्स में संलग्न होती हैं जो जोड़े में संयोजित होती हैं, सफेद रंग के फूल पतले डंठलों पर लगते हैं। इसके फूल कीट परागित होते है, मुख्य रूप से भृंगों के माध्यम से लम्बी धुरी वाले फल में दोलायमान, मांसल आवरण और लंबी सूती डोरी वाला, लाल से नारंगी रंग के 2–6 बीज होते हैं।

'खोरिका सोपा' दुनिया भर के मात्र तीन देशों [भारत (असम), म्यांमार और थाईलैंड] की मूल निवासी है। शोध साहित्य के अवलोकन से पता चलता है कि भारत में इस प्रजाति के पेड़ों की संख्या 50 से भी कम पायी गई है। म्यांमार में पेड़ों की संख्या पर कोई जानकारी नहीं है तथा थाईलैंड की सीमा पार से केवल एक पेड़ दर्ज किया गया है।

मैगनोलिया गुस्तावी किंग, जो कि उत्तर पूर्व भारत के ऊपरी असम में पाया जाता है, इस पादप प्रजाति को 2007 में अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (आई.यू.सी.एन.) द्वारा *'गंभीर रूप से लुप्तप्राय''* वृक्ष प्रजातियों की तालिका में सूचीबद्ध किया गया था। लगातार बढ़ते खतरों के मद्देनजर, इस महत्वपूर्ण *मैगनोलिया* प्रजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिए प्रजातियों की पुर्नप्राप्ति ही एकमात्र व्यवहार्य विकल्प है। इसलिए, इस स्थानिक प्रजाति की पुर्नप्राप्ति के साथ–साथ इसकी संख्या संरचना और पुर्नजनन स्थिति के आकलन के लिए जोरहाट, असम स्थित भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान ने एक परियोजना के तहत श्रीमति इलोरा दत्ता बोरा की प्रधान अन्वेषकी में अनुसंधान प्रारम्भ किया।

पादप संख्या संरचना और पुनर्जनन स्थिति

उपलब्ध साहित्य के आधार पर और पर्यावरण एवं वन विभाग, असम और अरुणाचल प्रदेश सरकारों से प्राप्त सहायता से, ऊपरी असम के विभिन्न संरक्षित वनों के साथ–साथ अरुणाचल प्रदेश में इस प्रजाति के प्राकृतिक वितरण का सर्वेक्षण किया गया था। आखिरकार, इस का

प्राकृतिक आवास असम (भारत) के तिनसुकिया जिले के डूमडूमा वन प्रभाग के अंतर्गत डांगोरी संरक्षित वन (27°17'53''N; 95°30'59''E) में पाया गया। क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान कुल 31 पेड़ की पहचान की गई थी। चूंकि, सभी पेड़ एक ही स्थान तक सीमित थे और इस प्रकार एक ही आबादी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, इसलिए इस प्रजाति की कुल आबादी के घनत्व में भिन्नता का मूल्यांकन नहीं किया जा सका। प्राकृतिक पुनर्जनन स्थिति नहीं' पाई गई। अंकुर और बिरवा अनुपस्थित थे लेकिन परिपक्व पेड़ मौजूद थे।

प्रमुख खतरों की पहचान

मौजूदा सर्वेक्षण के दौरान, *खोरीका सोपा* के लिए प्रमुख खतरों की पहचान की गई और इन्हें प्रबलता अनुसार निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया गया हैं:–

(क) इन प्रजातियों के लिए प्रमुख खतरे की पहचान मानवजनित उपद्रव के रूप में की गई है। हालाँकि, यह प्रजाति मुख्य रूप से अपनी लकड़ी के लिए अत्यधिक आर्थिक मूल्य की है, लेकिन असंवहनीय कटाई से प्राकृतिक जंगल में इसकी आबादी के आकार में गिरावट आती है; (ख) अकाष्ठ वन उत्पाद (एन.टी.एफ.पी) निष्कर्षण, भूमि उपयोग भूमि आवरण (एल.यू.एल.सी) परिवर्तन, आस–पास के गांवों के लोगों द्वारा ईंधन स्वरूप लकड़ी का संग्रह और चराई/चारा संग्रह भी प्रजातियों की आबादी में गिरावट के लिए जिम्मेदार कारक हैं; (ग) मानवीय उपद्रव के साथ–साथ मौसम संबंधी कारक भी प्रजातियों की संख्या और पुनर्जनन को प्रभावित करते हैं। सर्वेक्षण के दौरान भारी वर्षा, ओलावृष्टि, आंधी तूफान आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण संरक्षित वनों के अंदर कई पेड़ या तो उखड़ गए या टूटे हुए पाए गए थे और (घ) इसके अलावा, मानसून के दौरान लगातार बारिश से डंठल नरम हो जाता है और भारी फल हवा के झोंकों के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं, जो परिपक्वता चरण तक पहुंचने से पहले ही नष्ट हो जाते हैं, जिससे प्रजातियों का पुनर्जनन कम हो सकता है। क्षेत्र के अवलोकन से संकेत मिलता है कि ये फल जंगल के सतह पर पक्षियों, चींटियों और अन्य कीड़ों द्वारा भी खाए जाते हैं।

संरक्षण प्रयासों के अपेक्षित पहलू:

चूंकि *खोरीका सोपा* मानवजनित गतिविधियों के कारण गंभीर खतरे में है, इसलिए निम्नलिखित संरक्षण पहलूओं पर विचार करने की आवश्यकता है ताकि प्राकृतिक जंगलों में इसका अस्तित्व सुनिश्चित किया जा सके। जिनमें से कुछ हैं: (क) जंगलों के सीमांत गांवों में रहने वाले लोगों के बीच लक्षित प्रजातियों के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करना; (ख) विभिन्न पहलुओं पर ज्ञान साझा करने के कार्यक्रम का आयोजन। गैर–सरकारी संगठनों, वृक्ष उत्पादकों और अन्य हितधारकों द्वारा पौध उगाना, विभिन्न प्रसार तकनीकों के माध्यम से प्रोपेग्यूल्स को उगाना, वनवर्धन प्रथाओं और पौधों का सतत् प्रबंधन आदि; (ग) स्थानीय निवासियों को अपने घरेलू बगीचों और कृषि–वानिकी वृक्षारोपण में इस प्रजाति को उगाने के लिए प्रोत्साहित करना और (घ) दृढ़ता और पुनर्प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए पेड़ों की संख्या की स्थिति, खतरों और प्रबंधन प्रतिक्रियाओं की प्रभावशीलता का आकलन करने के लिए इस प्रजाति के आवास की समय–समय पर निगरानी आवश्यक है।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन के दौरान, *खोरीका सोपा* को 133 वर्षों के अंतराल के बाद फिर से खोजा गया है। यह भारत में *खोरीका सोपा* के वितरण, जनसंख्या संरचना, पुनर्जनन की स्थिति और खतरों का आकलन करने वाला पहला अध्ययन है। इस प्रजाति की बहाली के एक भाग के रूप में, इस प्रजाति को उसके प्राकृतिक आवास में पुनः स्थापित करने के लिए एक रोपणी स्थल स्थापित की गई थी।

अंततः यह आशा की जाती है कि इस लेख में प्रस्तुत परामर्श की मदद से, संबंधित वन विभाग इस प्रजाति के अधिक पौधों का उत्पादन करने में सक्षम होगा और इस तरह प्राकृतिक आवास में इसकी आबादी का आकार बढ़ जाएगा, ताकि प्रजातियों को पर्याप्त रूप से बहाल किया जा सके और आने वाले वर्षों में रेड डेटा बुक में उनकी वर्तमान श्रेणी (गंभीर रूप से लुप्तप्राय) से हटाया जा सके।

दुर्लभ और लुप्तप्राय वन प्रजातियों के लिए *पात्रे* संरक्षण तकनीक

श्रीमती रेखा माहातो एवं श्रीमती बेबीजा एल. सिंघा
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय

वर्तमान समय में एक प्रमुख चिंता का विषय पौधों की जैवविविधता का नुकसान होना है क्योंकि जंगल, शहरीकरण, कृषि क्षेत्र विस्तार और जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप विश्व स्तर पर वन कम होते जा रहे हैं। अत्यधिक कटाई, आवास विघटन और निम्न बीज व्यवहार्यता के कारण, कई दुर्लभ और लुप्तप्राय वनप्रजातियां खतरे में हैं। पारंपरिक संरक्षण तकनीक, जैसे संरक्षित क्षेत्र स्थापित करना या बीज एकत्र करना, अब पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि कुछ प्रजातियों में निम्न बीज व्यवहार्यता होती है। इस मामले में, *पात्रे* संरक्षण एक समकालीन वैज्ञानिक विधि है जिसमें पौध सामग्री को नियंत्रित प्रयोगशाला की स्थिति में रखना शामिल है।

पात्रे संरक्षण

प्रयोगशाला के वातावरण में कृत्रिम परिस्थितियों में पौधों के ऊतकों जैसे शूट टिप्स, बड्स, भ्रूण या यहां तक कि एकल कोशिकाओं को बढ़ाना और संरक्षित करना *पात्रे* संरक्षण के रूप में जाना जाता है। इन ऊतकों को पोषक तत्वों से भरपूर जेल या तरल मीडिया में बनाए रखा जाता है जो विकास और विकास के लिए आवश्यक प्राकृतिक स्थितियों को दोहराता है। इसका उद्देश्य लुप्तप्राय प्रजातियों की आनुवंशिक सामग्री को संरक्षित करना, उन्हें धीमी गति से बढ़ने वाले या निष्क्रिय रूप में बनाए रखना है, फिर आवश्यकता पड़ने पर अनुसंधान या पुनः रोपण के लिए उन्हें गुणा करना है। यह विधि वन प्रजातियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जो ऐसे बीज उत्पन्न करते हैं जो दुःसाध्य होते हैं, यानी ऐसे बीज जिन्हें लंबे समय तक संग्रहीत नहीं किया जा सकता है या जो प्राकृतिक वातावरण में अंकुरित नहीं होते हैं।

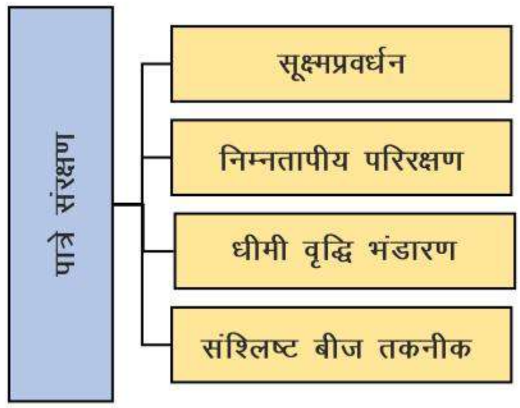

प्रमुख *पात्रे* तकनीक

सूक्ष्मप्रवर्धन

विभिन्न संरक्षण मांगों को विभिन्न प्रकार के पात्रे संरक्षण दृष्टिकोणों द्वारा पूरा किया जा सकता है। सबसे लोकप्रिय में से एक सूक्ष्मप्रवर्धन है, जो एक नियंत्रित वातावरण में छोटे ऊतक नमूनों से पौधों को उगाने की प्रक्रिया है। यह तकनीक जल्दी से एक ही नमूने से बड़ी संख्या में समान पौधों का उत्पादन कर सकती है, जो उन प्रजातियों के लिए कारगर होती है जो जंगल में लगभग विलुप्त हो गई हैं।

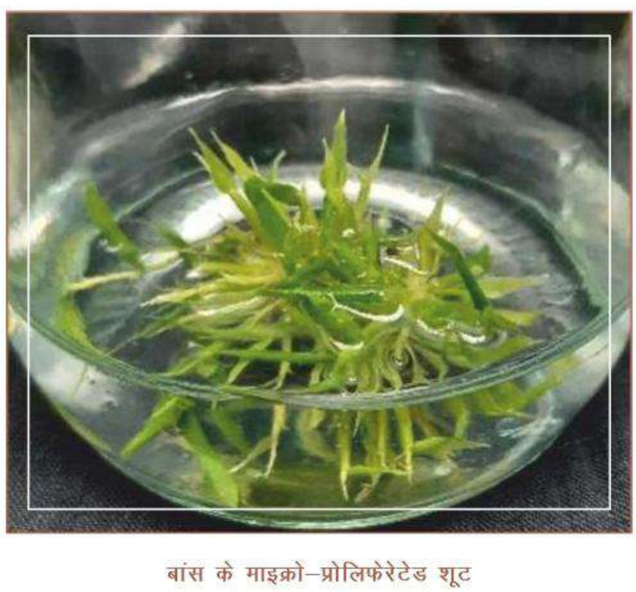

बांस के माइक्रो–प्रोलिफेरेटेड शूट

निम्नतापीय परिरक्षण

निम्नतापीय परिरक्षण (क्रायो प्रिज़रवेंशन) जिसमें अत्यंत कम तापमान पर पौधों की कोशिकाओं को फ्रीज करना आमतौर पर, दीर्घ कालिक संरक्षण के लिए – 196°C पर तरल नाइट्रोजन में शामिल है। सभी जैविक गतिविधि इन तापमानों पर रुक जाती है, जिससे पौधे की सामग्री को स्थायी रूप से संरक्षित किया जा सकता है। संक्षेप में, पर्यावरणविदों के पास भविष्य की पीढ़ियों के लिए पौधों की विविधता को संरक्षित करने के लिए एक जैविक टाइम मशीन है क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर ऊतकों को जमे हुए और पूरे पौधों में पुनर्जीवित किया जा सकता है।

धीमी वृद्धि भंडारण

यह एक और लोकप्रिय तकनीक है, विशेष रूप से मध्यम अवधि के संरक्षण के लिए, उपयोग की जाती है। मीडिया में तापमान, प्रकाश या पोषक तत्वों को कम करके, पौधे के ऊतकों की वृद्धि इस विधि के साथ पूर्ण रूप से धीमी हो जाती है। यह लगातार उपसंवर्धन की आवश्यकता को कम कर के संदूषण और आनुवंशिक परिवर्तनों की संभावना को कम करता है।

ऑर्किड और लिटसीक्यूबेबा की धीमी वृद्धि चरण

संश्लिष्ट बीज तकनीक

संश्लिष्ट बीज प्रौद्योगिकी एक और नवीन दृष्टिकोण है जिसके द्वारा संरक्षण किया जा सकता है। इस मामले में, सोमैटिक भ्रूण या *पात्रे* उगाए गए शूट टिप्स कृत्रिम बीजों का उत्पादन करने के लिए जेल जैसे पदार्थ में समाहित होते हैं जिन्हें लगाया या संरक्षित किया जा सकता है। यह विशेष रूप से उन प्रजातियों के लिए सहायक है जिनका प्राकृतिक बीज उत्पादन बहुत कम है।

केस अध्ययन

इन तरीकों का उपयोग करके इतनी दुर्लभ लुप्तप्राय और खतरनाक संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण किया गया है। उदाहरण के लिए, जंगलों में गंभीर रूप से अधिक कटाई होने के बाद, कैंसर के इलाज के लिए दवाएं बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले एक औषधीय वृक्ष हिमालयन यू (*टैक्सस वालिचियाना*) को ऊतक संवर्धन का उपयोग करके सफलतापूर्वक प्रचारित किया गया है। सूक्ष्मप्रवर्धन ने लुप्तप्राय *इलेक्स खासियाना, टेरोकार्पस सैंटालिनस, डैफनेनीरमय* और कमजोर प्रजातियों *डिप्टेरोकार्पस टर्बिनेटस* और अन्य कई को पुनर्स्थापित किया है। वन पारिस्थितिकी तंत्र के महत्वपूर्ण तत्व, जैसे *उल्मस अमेरिकाना, बेतुला पेंडुला, टेट्राक्लिनिस आर्टिकुलेटा, सिकोइया सेम्परविरेन्स* और *पाइनस केसिया* को भी क्रायो प्रिजरवेंशन तकनीकों द्वारा संरक्षित किया गया है।

निष्कर्ष:

पात्रे संरक्षण का उद्देश्य केवल विशिष्ट प्रजातियों के बजाय पूरे पारिस्थितिक तंत्र को संरक्षित करना है। अपनी क्षमता के बावजूद, *पात्रे* संरक्षण में कमियां भी हैं। संदूषण और आनुवंशिक अस्थिरता को रोकने के लिए इस पद्धति में विशेष उपकरण, कुशल श्रमिक और सतर्क रखरखाव आवश्यक हैं। जंगल में प्रयोगशाला–उगाए गए पौधों को पुनः रोपित करने में समस्याएं है क्योंकि पौधों को अपने परिवेश के अनुकूल होने और प्रतिकूल जलवायु स्थिति को दूर करने की आवश्यकता होती है। क्षेत्र–आधारित पहलों और बीज बैंकों का समर्थन करने के लिए, *पात्रे* तकनीकों को एक बड़ी संरक्षण योजना के घटक के रूप में देखा जाता है।

भविष्य में, जीनोम अनुक्रमण, आनुवंशिक संपादन और एआई–आधारित निगरानी जैसी अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों के साथ *पात्रे* संरक्षण के संयोजन से इसकी प्रभावकारिता और भी बढ़ सकती है। इन तरीकों को जोड़कर, सबसे तन्यक जीनो टाइप को खोजना और प्रसार करना, विकास की परिस्थितियों में सुधार करना और वास्तविक समय में पुनः रोपित आबादी की स्थिति को ट्रैक करना आसान होगा। संकटग्रस्त वन प्रजातियों के लिए, *पात्रे* संरक्षण व्यवस्था प्राकृतिक पारितंत्र में लाभदायक है।

पाटला: एक महत्वपूर्ण दशमूल औषधीय वृक्ष

श्री एल.आर. पण्डा, श्री सचिन कुमार, श्री पुष्पेन्द्र सिंह, श्री रोहन सोलंकी एवं डॉ० माला राठौर
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सामान्य परिचय:

स्टीरियोस्पर्मम चेलोनोइडस जिसे आमतौर पर पाडल, पाटला, पटाला, पादरीनाम से जाना जाता है। यह एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है, जो बिग्नोनियेसी कुल से संबंधित है। इसके फूल मई से जुलाई के मध्य खिलते हैं, जबकि फल सितंबर से दिसंबर तक परिपक्व होते हैं। इस वृक्ष के मुख्यतः जड़ एवं छाल औषधीय दृष्टि से उपयोगी होते हैं। यह सामान्य तौर पर समुद्र तल से 300 मीटर से 700 मीटर तक की ऊंचाई तक पाया जाता है। पेड़ की लंबाई 15–20 मीटर तक होती है, तना सीधा और मुकुट की तरह फैला हुआ होता है, एवं इसकी जड़ों की संरचना कठोर एवं रेशेदार होती हैं। पाटला के फूलों का रंग पीला और हल्का गुलाबी होता है। फल एक लंबा बेलनाकार कैप्सूल होता है, जिसमें कई पंखदार बीज होते हैं।

इस वृक्ष का वर्णन पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी मिलता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में भी इस वृक्ष के गुणों का वर्णन किया गया है

वितरण:–सामान्यतः यह पेड़ उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, मालाबार, मैसूर के मैदानी एवं तराई भाभर क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तराखण्ड में यह देहरादून, हरिद्वार, रामनगर, तराई पूर्वी, तराई दक्षिणी, कोटद्वार वन प्रभागों के साथ–साथ राजाजी एवं कॉर्बेट नेशनल पार्क में भी पाया जाता है।

औषधीय उपयोग:–यह आयुर्वेदिक औषधि दशमूलारिष्ट बनाने में उपयोग होने वाले प्रमुख तत्वों में से एक है। इसका उपयोग मुख्य रूप से सूजन, दर्द, बुखार, अस्थमा एवं उल्टी के इलाज में किया जाता है। विभिन्न आयुर्वेदिक पाण्डुलिपियों के अनुसार अपने वात के कारण गठिया के लक्षणों को नियंत्रित करने में प्रभावी है।

पौधों को उगाने की विधि:–फल परिपक्व होने पर पेड़ पर ही फूट जाते हैं। इसलिए फलों को फूटने से पहले पेड़ से एकत्र किया जाता है, एवं कुछ समय तक धूप में सुखाकर बीजों को निकाला जाता है। शोध करने के बाद यह पाया गया है कि, पाटला के बीज वर्मीकुलाईट में सबसे ज्यादा अंकुरित होते हैं। वर्मीकुलाईट में यह पाया गया है कि, बीजों के अंकुरण का प्रतिशत 40 से 50 प्रतिशत है। जून का महीना बीजों को लगाने के लिए सबसे अनुकूल समय होता है। बीजों से पौधे निकलने में 8 से 15 दिन लगते हैं। पॉलीबैग में पौधों को लगभग 7 से 8 महीनों तक रखा जाता है। साल में दो बार निराई– गुडाई की आवश्यकता होती है। गर्मियों के दिनों में पौधों को पर्याप्त मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है।

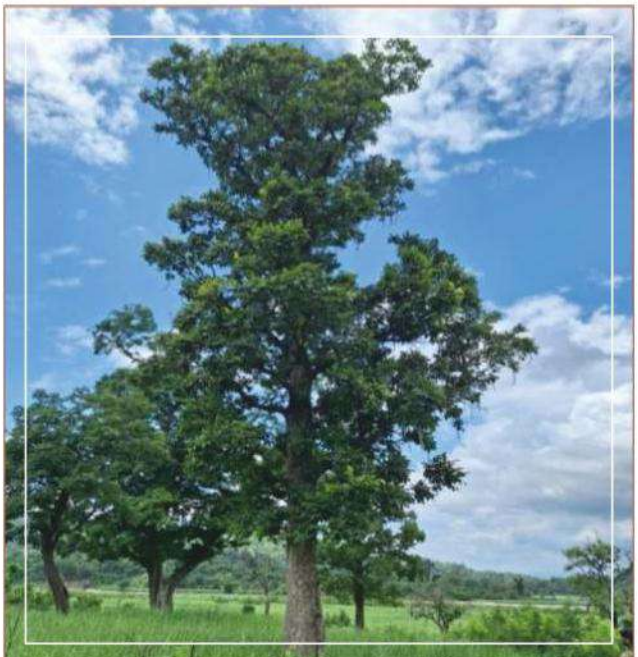

पाटला का वृक्ष

पाटला के फल

पाटला के बीजों का एकत्रीकरण

पटाला का जनजातीय महत्वः— पाटला पौधे के क्षेत्र अध्ययन के दौरान यह पाया गया, कि इस पौधे से संबंधित जानकारी जंगलों में रहने वाले जनजातीय लोगों को प्राप्त है, और उनके द्वारा इस पौधे को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। जनजातीय लोगों के द्वारा अपने पशुओं को इस पौधे की पत्तियों को चारे के रूप में दिया जाता है। मान्यताओं के अनुसार इस पौधे के सेवन से मवेशियों के दूध एवं आकार में वृद्धि होती है।

पाटला का पौधा

वाणिज्यिक महत्वः— यह दशमूल — 10 जड़ों के समूह में से एक है, जिसमें शक्तिशाली सूजनरोधी गुण हैं, यह दशमूल युक्त सभी दवाओं का एक घटक है — जैसे— दशमूलारिष्टम — प्रसव के बाद माँ की देखभाल, सर्दी, बुखार, खांसी आदि में उपयोग किया जाता है। धन्वंतरम तेलम — बाहरी और आंतरिक उपयोग के लिए रुमेटीइड गठिया, ऑस्टियो गठिया में उपयोग किया जाता है।

निष्कर्षः— पाटला एक बहुमुखी और शक्तिशाली आयुर्वेदिक जड़ी बूटी है जो कि दशमूलारिष्ट औषधि में अपना विशेष स्थान रखती है। सामान्यतः पाटला के पौधों का पुनर्जनन कठिन होता है। अकाष्ठ वन उपज शाखा, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की नर्सरी में बीजों द्वारा पाटला के पौधों की गुणवक रोपण सामग्री तैयार की गई है। वर्तमान समय में पेड़ की जड़ों की अवैज्ञानिक कटाई एवं पत्तियों का चारे के रूप में अत्यधिक दोहन होने के कारण इसकी जैव—विविधता में लगातार कमी आ रही है। जिससे इस महत्वपूर्ण एवं गुणकारी पेड़ के अस्तित्व पर खतरा बना हुआ है। इसके संरक्षण हेतु लगातार प्रयास करने की आवश्यकता है।

पूर्वोत्तर भारत में बाँस की कोपलों पर जलवायु विविधता का प्रभाव: रूपात्मक और जैव रासायनिक अध्ययन

श्री सोनकेश्वर शर्मा एवं कु. परिशमिता हजारिका
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

बाँस को 'हरा सोना' कहा जाता है, क्योंकि यह तेजी से बढ़ता है और लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। यह पोएसी परिवार और एम्बुसोइडिया उप परिवार से संबंधित है। बाँस उपयोगी होता है, इसके कोमल कोपल स्वादिष्ट व्यंजन हैं, जबकि इसके मजबूत तने घर बनाने और हस्तशिल्प में उपयोग किए जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत में बाँस का आर्थिक और पारिस्थितिक महत्व है। यहाँ बाँस नकदी फसल के साथ–साथ ग्रामीण जीवन का आधार भी है। यह क्षेत्र दुनिया की सबसे समृद्ध बाँस जैव–विविधता वाले इलाकों में से एक है। पूर्वोत्तर राज्यों में 19 जेनेरा (वंश) के अंतर्गत लगभग 78 बाँस की स्थानीय और विदेशी प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से 16 प्रजातियों के कोपल खाने योग्य हैं, और 13 का व्यावसायिक महत्व है, जो पारंपरिक खाद्य प्रणालियों और स्थानीय बाजारों को समर्थन देते हैं। कुछ अध्ययनों के अनुसार, यह संख्या और भी अधिक (लगभग 90 प्रजातियाँ) हो सकती है, जिनमें से 41 सिर्फ इसी क्षेत्र में पाई जाती हैं, जोकि यहाँ की स्थानीय हैं। इस तरह, पूर्वोत्तर भारत, देश के वनस्पति संपदा में एक बड़ा योगदान देता है। यह विविधता न केवल पर्यावरण को समृद्ध करती है, बल्कि पूर्वोत्तर भारत के लोगों और बाँस के बीच गहरे सांस्कृतिक और पारिस्थितिक संबंधों को भी दर्शाती है।

बाँस की कोपलें: स्थानीय व्यंजन से वैश्विक व्यापार तक ताज़ी बाँस की कोपलें, जो भारत के व्यंजनों का एक खास हिस्सा हैं, अब दुनियाभर में लोकप्रिय हो रही हैं। जापान, ऑस्ट्रेलिया, डेनमार्क, फिलीपींस, मलेशिया और सिंगापुर जैसे देशों में इनकी डिब्बाबंद या ताज़ी रूप में बहुत माँग है। जापान हर साल करीब 3,400 टन ताज़ी और 1,30,000 टन डिब्बाबंद बाँस की कोपलें आयात करता है। ऑस्ट्रेलिया भी हर साल 6,000 से 12,000 टन डिब्बाबंद बाँस की कोपलें मंगवाता है। हालाँकि भारत, बाँस उगाने वाला एक प्रमुख देश है, फिर भी इसने अब तक इस निर्यात संभावना का पूरा लाभ नहीं उठाया है। भारत में ताज़ी बाँस की कोपलें सीजन के दौरान 0.23 अमरीकी डॉलर से 0.27 अमरीकी डॉलर प्रति किलोग्राम (लगभग) में मिलती हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में काफी प्रतिस्पर्धी बन जाती हैं। अगर इस निर्यात के अवसर का सही उपयोग किया जाए तो यह पूर्वोत्तर भारत के ग्रामीण इलाकों की अर्थव्यवस्था को मज़बूत बना सकता है और रोज़गार के नए अवसर दे सकता है। *डेन्ड्रोकैलमस हैमिल्टोनाई* नाम की बाँस प्रजाति, जो इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पाई जाती है बहुत, अनुकूलनीय है, तथा इसकी कोपलें स्थानीय खानपान में भी आम हैं। इसके विपरीत, *मेलोकाना बेसीफेरा,* जो एक और लोकप्रिय खाने योग्य बाँस है, मुख्यतः अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिज़ोरम और त्रिपुरा में खाई जाती है, जहाँ इसकी विशेषता और पारंपरिक व्यंजन प्रचलित हैं।

खाने योग्य बाँस: स्थानीय प्रचुरता, पोषण का खजाना

पूर्वोत्तर भारत में खाने योग्य बाँस की प्रजातियों की उपलब्धता और वितरण ही इनके सेवन और मूल्य को तय करते हैं। ताज़ी बाँस की कोपलों का क्षेत्रीय बाज़ार हर साल लगभग 5,685 टन आँका जाता है, जिसमें मणिपुर 2,188 टन/वर्ष सबसे आगे है, उसके बाद अरुणाचल प्रदेश आता है। यह आँकड़े इस क्षेत्र में बाँस की कोपलों की सांस्कृतिक पसंद और बढ़ती आर्थिक अहमियत को दर्शाते हैं। मुख्य प्रजातियों में, *डी. हैमिल्टोनाई* अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड के ताज़ा कोपल बाज़ारों पर प्रभावी हैं, जो इसकी अनुकूलता और स्थानीय माँग को दर्शाता है। वहीं, *एम. बेसीफेरा* मिज़ोरम और त्रिपुरा में प्रमुख रूप से पाई जाती है। *बैम्बूसा टूल्डा, बैम्बूसा बैम्बोस,* और *बैम्बूसा बाल्कोआ* जैसी अन्य खाद्य बाँस प्रजातियाँ भी इस क्षेत्र में खूब पनपती हैं और विशेषकर दूरस्थ और

ग्रामीण समुदायों में खाद्य सुरक्षा में अहम भूमिका निभाती हैं। बाँस की कोपलें पोषण से भरपूर होती हैं—इनमें प्रोटीन, फाइबर, विटामिन और खनिज प्रचुर मात्रा में होते हैं। साथ ही इनमें फिनॉल और फाइटोस्टेरॉल जैसे जैव सक्रिय यौगिक भी होते हैं, जो एंटीऑक्सिडेंट और कोलेस्ट्रॉल घटाने वाले गुणों के लिए जाने जाते हैं। इस कारण ये केवल भोजन ही नहीं, बल्कि औषधीय या कार्यात्मक आहार के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं।

परंपरागत चिकित्सा प्रणालियाँ बाँस की कोपलों का उपयोग लंबे समय से करती आ रही हैं, लेकिन अलग—अलग क्षेत्रों में उगाई जाने वाली प्रजातियों की आकृतिक विविधता और जैव रसायनिक संरचना पर पर्याप्त शोध न होने के कारण इनका पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका है। इस ज्ञान को उजागर करना आवश्यक है, ताकि इनका पोषण मूल्य बढ़ाया जा सके और व्यावसायिक उपयोग का दायरा भी फैलाया जा सके।

कृषि जलवायु उप क्षेत्रों में बाँस की जैवविविधता:

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र, जो पूर्वी हिमालय, हरे—भरे घाटियों और समृद्ध नदी तंत्र से घिरा है, मुख्य रूप से एक उष्णकटिबंधीय पर्वतीय पारितंत्र का प्रतिनिधित्व करता है। यह क्षेत्र छह विशिष्ट कृषि—जलवायु उप—क्षेत्रों में विभाजित है, जिन्हें ऊँचाई, वर्षा और तापमान के भिन्न—भिन्न स्तरों के आधार पर चिह्नित किया जा सकता है। इन उप—क्षेत्रों का प्रभाव केवल भौगोलिक परिदृश्य तक सीमित नहीं है, बल्कि ये बाँस जैसी प्रजातियों की वृद्धि, गुणवत्ता और विविधता को भी गहराई से प्रभावित करते हैं। हर उप—क्षेत्र की अपनी विशेष जलवायु, मिट्टी और पर्यावरणीय विशेषताएँ होती हैं, जो बाँस जैसी फसलों की खेती के लिए अद्वितीय पारिस्थितिक वातावरण तैयार करती हैं। इस प्रकार, इन कृषि—जलवायु उप—क्षेत्रों की विविधता पूर्वोत्तर भारत में बाँस की समृद्ध जैव विविधता को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सारणी1: जलवायु, ऊँचाई और क्षेत्रफल के आधार पर बाँस के अनुकूल क्षेत्रों की तुलना

क्षेत्र का नाम	ऊँचाई की सीमा	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	वर्षा (मिमी)	तपमान (°C)	बाँस की उपयुक्तता
1. अल्पाइन क्षेत्र	>3500 मीटर	47,068	˜750	17/2	सबसे कम उपयुक्त; अत्यधिक ठंडा, कठोर हिमालयी वातावरण
2. समशीतोष्ण उप—अल्पाइन क्षेत्र	1500-3500 मीटर	33,564	˜2000	20/11	ठंडी जलवायु वाली बाँस प्रजातियों के लिए उपयुक्त
3. उपोष्ण पहाड़ी क्षेत्र	1000-1500 मीटर	29,021	˜2000	30/12	अत्यधिक उपयुक्त; *ड़ी हैमिल्टोनाई* और अन्य प्रजातियों के लिए आदर्श
4. उपोष्ण मैदानी क्षेत्र	400-1000 मीटर	812	˜1600	27/10	छोटाक्षेत्र, निम्नभूमि बाँस को समर्थन देता है
5. मध्यम उष्णकटिबंधीय पहाड़ी क्षेत्र	200-800 मीटर	26,349	˜1400	30/12	कई प्रजातियों को समर्थन देता है; मध्यवर्तीय कालीन उष्णकटिबंधीय पहाड़ी क्षेत्र
6. मध्यम उष्णकटिबंधीय मैदानी क्षेत्र	0-200 मीटर	29,333	˜2000	33/17	प्रमुखबाँस क्षेत्र; गर्म, आर्द्र, जैव विविधता से भरपूर; *बी. बाल्कोआ* और *बी. टूल्डा* के लिए आदर्श

जटिल स्थलाकृति और जलवायु सीधे तौर पर बाँस के वितरण, वृद्धि और संरचना को प्रभावित करते हैं। इस क्षेत्र में उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु प्रमुख है, जो वर्ष भर गर्म और आर्द्र परिस्थितियों की विशेषता रखती है। ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सर्दियाँ ठंडी होती हैं और दिसंबर से फरवरी के बीच मौसमी हिमपात भी होता है। लगभग 2,000 मीटर की ऊँचाई पर मई महीने में तापमान घटकर लगभग 11°C तक पहुँच जाता है। गर्मी का मौसम अप्रैल से शुरू होता है, जून में चरम पर होता है और अगस्त तक धीरे–धीरे कम हो जाता है। गर्मियों में औसत तापमान लगभग 20°C बना रहता है, लेकिन स्थानीय स्तर पर ऊँचाई के अंतर के कारण तापमान में काफी भिन्नता देखी जाती है।

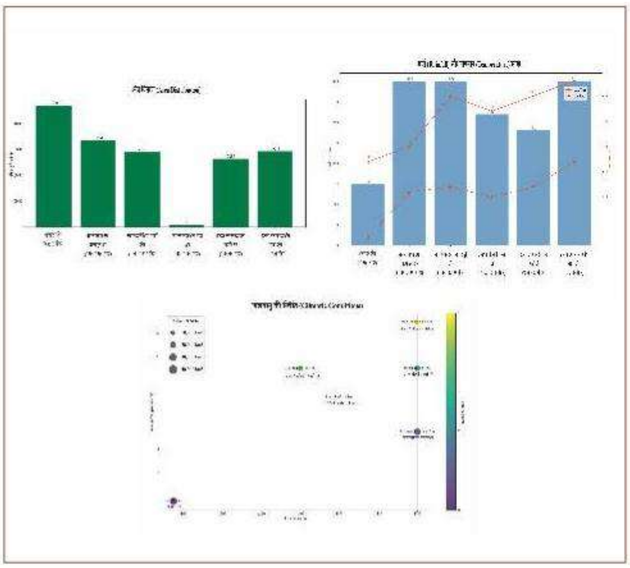

पूर्वोत्तर भारत में कृषि–जलवायु उप–क्षेत्रों का अवलोकन

ये जलवायु कारक बाँस की प्रजातियों के आकृति और जैव–रासायनिक गुणों को आकार देते हैं, जिससे पूर्वोत्तर भारत बाँस की विविधता के अध्ययन के लिए एक अत्यंत रोचक क्षेत्र बन जाता है।

शोध के दौरान उप क्षेत्रों में बाँस पर मिली आकृतिक विविधता

बाँस की सबसे दिलचस्प विशेषताओं में से एक यह है कि, यह अलग–अलग जलवायु क्षेत्रों में अपने आकार और बनावट को बदलकर खुद को आसानी से ढाल लेता है। ऊँचाई, वर्षा और तापमान जैसे पर्यावरणीय कारक बाँस की कोपलों के आकार, रंग और बनावट को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। यहां तक कि एक ही प्रजाति के भीतर भी ये अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, *डी. हैमिल्टोनाई* की एक 20 सें.मी. लंबी कोपल, जो इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर खाई जाती है, को ही लें। अलग–अलग कृषि–जलवायु उप–क्षेत्रों में इसके कुछ मुख्य लक्षणों–जैसे कि शूट खोल की लंबाई, संख्या और रंग में स्पष्ट भिन्नता देखी गई है। जो इस बात का प्रमाण हैं कि बाँस की आकृति पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार बदलती है।

डी. हैमिल्टोनाई, कोपलें, बाज़ार उपलब्धता और कृषि–जलवायु क्षेत्रों में रूपात्मक विविधता का संयोजित और तुलनात्मक प्रस्तुतीकरण

डी. हैमिल्टोनाई अल्पाइन ज़ोन में नहीं पाया जाता, क्योंकि वहाँ की विषम जलवायु और अत्यधिक ऊँचाई इसके विकास के लिए अनुकूल नहीं हैं। यह बात दर्शाती है कि जलवायु और ऊँचाई में अंतर बाँस की उपस्थिति को किस तरह प्रभावित करते हैं, जो न केवल उसके विकास के तरीके, बल्कि उसकी भोज्यता, बाज़ार में आकर्षण और पोषण गुणों पर भी असर डाल सकते हैं। इस प्रकार की आकृतिक भिन्नताओं को समझना आवश्यक है ताकि, बाँस की खेती को और अधिक प्रभावी बनाया जा सके, तथा स्थान–विशेष के अनुसार उपयुक्त प्रजातियों का चयन किया जा सके, और इसके व्यापक व्यावसायिक व पाक उपयोग को खोजा और बढ़ाया जा सके।

बदलती जलवायु में बाँस की जैव रासायनिक विविधताओं पर हमारा अध्ययन

बाँस की कोपलें केवल स्वाद तक सीमित नहीं बल्कि जैव–रासायनिक दृष्टि से भी जटिल होती हैं, जो पोषण संबंधी लाभ के साथ–साथ कुछ संभावित जोखिम भी प्रस्तुत करती हैं। हाल की शोधों में हमने बाँस की कोपलों में दो प्रमुख जैव–रासायनिक संकेतकों की जांच की, जिसमें कुल सायनाइड मात्रा (टीसीसी), एस्कॉरबेट पेरॉक्सिडेज़ (एपीएक्स) गतिविधि शामिल हैं। इनमें से एपीएक्स गतिविधि एक महत्वपूर्ण एंटीऑक्सिडेंट संकेतक मानी जाती है, जो कोपलों के स्वास्थ्यवर्धक गुणों का संकेत देती है।

अध्ययन में हमने पाया कि बाँस की कोपलों के सिरे वाले हिस्से में हमेशा टीसीसी और एपीएक्स दोनों का स्तर अधिक है, जबकि मध्य और निचला हिस्सा क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर आते हैं। जहाँ उच्च एपीएक्स गतिविधि इसके एंटीऑक्सिडेंट गुणों के कारण स्वास्थ्य लाभ से जुड़ी होती है, वहीं अधिक टीसीसी स्तर यदि बिना उपचार के सेवन किया जाए तो हानिकारक हो सकता है। इसलिए,बाँस की कोपलों का सावधानीपूर्वक चयन और सही तरीके से प्रसंस्करण अत्यंत आवश्यक हो जाता है, ताकि इनके पोषण लाभ तो मिले, लेकिन जोखिम से बचा जा सके।

अध्ययन की गई प्रजातियों में, *बी. बाल्कोआ* और *डी. हैमिल्टोनाई* में सभी कृषि–जलवायु उप–क्षेत्रों में सबसे कम सायनाइड मात्रा बाक़ी की तुलना में पाई गई, जिससे ये ताज़ा सेवन के लिए अधिक सुरक्षित मानी जा सकती हैं। वहीं दूसरी ओर, अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों से प्राप्त प्रजातियाँ या कोपलें, भले ही एंटीऑक्सिडेंट्स से भरपूर होती हैं, लेकिन वे जलवायुजनित तनाव के कारण अधिक मात्रा में सायनाइड जमा कर लेती हैं। इस कारण, ऐसी कोपलों को सेवन से पहले उपयुक्त प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है, ताकि स्वास्थ्य पर किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव न पड़े।

बाँस की कोपलों को उबालना सायनाइड को निष्क्रिय करने का एक प्रभावी और पारंपरिक तरीका है। हालांकि, यह प्रक्रिया एंटीऑक्सिडेंट गतिविधि को भी कुछ हद तक कम कर देती है। इसलिए, एक संतुलन बनाना आवश्यक है, जिससे ऐसी कोपलों को उचित रूप से प्रसंस्कृत किया जाए जिनमें सायनाइड मात्रा अधिक हो, साथ ही उनके लाभकारी तत्वों को ज्यादा से ज्यादा संरक्षित रखने का प्रयास भी किया जाए।

परीक्षण में रोचक बात यह भी मिली कि, जिन बाँस की कोपलों में एपीएक्स गतिविधि अधिक पाई गई, उनकी भंडारण अवधि (शेल्फ लाइफ) भी अधिक देखी गई, विशेष रूप से जब उन्हें 0–4°C या इससे कम तापमान पर रखा गया। यह गुण इन्हें खाद्य उद्योग के लिए और भी मूल्यवान बनाता है, क्योंकि इससे कोपलों को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है और बिना पोषण गुणवत्ता घटाए उन्हें विस्तृत स्तर पर वितरित किया जा सकता है।

जलवायु, जैव–रसायन और प्रसंस्करण विधियों के बीच का यह पारस्परिक संबंध हमें यह समझने का एक स्पष्ट मार्ग प्रदान करता है कि कौन–सी बाँस प्रजातियाँ और कैसे वातावरण चुनें, ताकि ऐसी कोपलों का उत्पादन हो जो सुरक्षित भी हों और पोषक तत्वों से भरपूर भी। यह न केवल ग्रामीण किसानों के लिए लाभकारी है, बल्कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के लिए भी एक बड़ी उपलब्धि साबित हो सकती है।

बहुउपयोगी चमत्कारी वृक्षः मोरिंगा

डॉ. प्रतिमा पटेल
वन अनुसंधान संस्थान सम विश्वविद्यालय, देहरादून

मोरिंगा (*मोरिंगा ओलीफेरा*) एक बहुउपयोगी, तीव्र वृद्धिवाला औषधीय वृक्ष है, जिसे "चमत्कारी वृक्ष" भी कहा जाता है। यह लेख मोरिंगा के पोषणात्मक, औषधीय, औद्योगिक एवं कृषि–आर्थिक महत्व का समग्र विवेचन प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मोरिंगा केवल मानव स्वास्थ्य में सहायक नहीं है, बल्कि खाद्य–सुरक्षा, पोषण उन्मूलन और सतत कृषि के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में बढ़ती जनसंख्या, कुपोषण और जीवन शैली से जुड़ी बीमारियाँ वैश्विक समस्या बनती जा रही हैं। ऐसे में मोरिंगा एक ऐसा पौधा है जो कम संसाधनों में अधिक पोषण और औषधीय लाभ प्रदान करता है। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस का उल्लेख **300** से अधिक रोगों के उपचार में किया गया है। मोरिंगा का पेड़ जिसे 'चमत्कारी वृक्ष' और 'ड्रमस्टिक ट्री' एवं मोरिंगा भी कहा जाता है, विश्व के सर्वाधिक उपयोगी पौधों में से एक माना जाता है। इसके पत्ते, फूल, फल, बीज, तना, जड़ और छाल सभी उपयोगी हैं। पौष्टिकता, औषधीय गुण और पर्यावरणीय महत्त्व के कारण मोरिंगा आज वैश्विक स्तर पर ध्यान आकर्षित कर रहा है।

वर्गीकरण एवं वनस्पति विवरण

- वैज्ञानिक नामः *मोरिंगा ओलीफेरा*
- कुलः मोरिंगेसी
- प्रकारः पर्णपाती, मध्यम आकार का वृक्ष
- ऊँचाईः 8–12 मीटर
- पत्तियाँः त्रिपर्णीय, कोमल, गहरे हरे रंग की
- फूलः सफेद/क्रीम, सुगंधित
- फलः लंबीफली (ड्रमस्टिक)

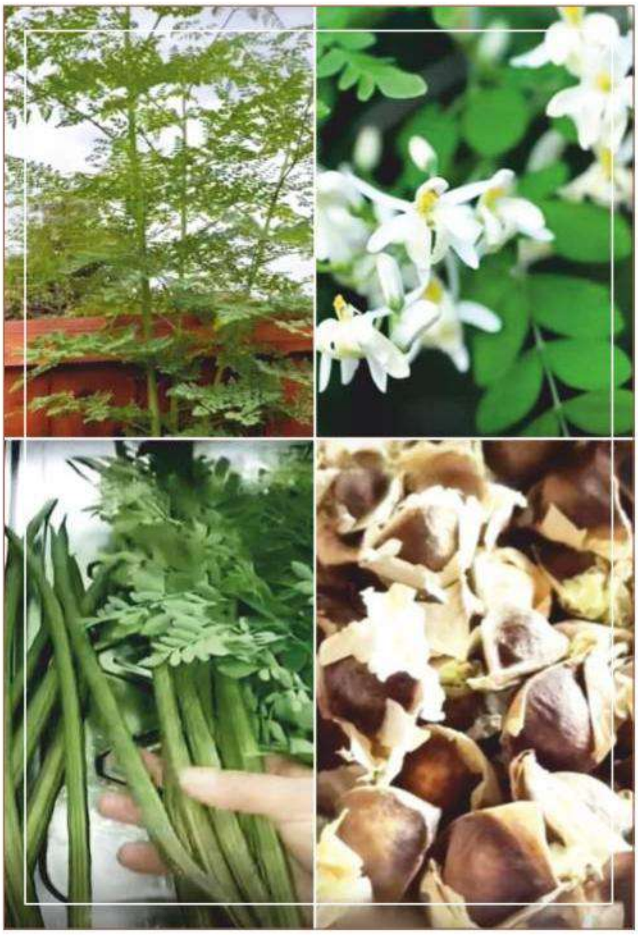

मोरिंगा के वृक्ष, फूल, फली एवं बीज

भौगोलिक वितरणः मोरिंगा का मूल स्थान भारत है, किंतु यह अब– एशिया, अफ्रीका, मध्यपूर्व दक्षिण अमेरिका के उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है।

पोषणात्मक संरचनाः मोरिंगा की पत्तियाँ पोषण का भंडार हैं। उनके पोषक तत्व एवं विशेषताएं हैं।

पोषकतत्व	विशेषता
प्रोटीन	अमीनो अम्लों से भरपूर
विटामिन ए	आँखों व त्वचा के लिए उपयोगी
विटामिन सी	प्रतिरक्षा बढ़ाता है
कैल्शियम	हड्डियों के लिए आवश्यक
आयरन	एनीमिया में लाभकारी
एंटीऑक्सीडेंट्स	कोशिकाओं की रक्षा

औषधीय गुण: मोरिंगा ओषधीय गुणों का समृद्ध स्रोत है। इसके वृक्ष के हर भाग के निम्न प्रकार के स्वास्थ्य लाभ मिलते है ।

पत्तों का रस में मौजूद एंटिऑक्सीडेंट्स शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

फूल– हृदय को मजबूत करता है एवं मधुमेह, रक्तचाप, पाचन सुधार भी करता है।

छाल– सूजन रोधी एवं जीवाणुरोधी प्रभाव डालता है, गठिया, जोड़ों के दर्द एवं संक्रमण में उपयोगी है ।

जड़– सूजन कम करने, दर्दनाशक और एंटीसेप्टिक गुण के कारण उपयोगी है।

पात्तियों का चूर्ण–मधुमेह, रक्तचाप, एनीमिया, पाचन सुधार और यकृत स्वास्थ्य के लिए मोरिंगा अत्यंत उपयोगी माना जाता है। इसमें उपस्थित इसोथीओ सायानेटस रक्त शर्करा को नियंत्रित करते हैं।

फली–कोलेस्ट्रॉल कम कर हृदय स्वास्थ्य सुधारता है, प्रतिरक्षा प्रणाली सुदृढ़ करता है।

मोरिंगा के कटिंग से वर्धी प्रजनन

कृषि एवं पर्यावरणीय महत्व: मोरिंगा को कम जल की आवश्यकता होती है। शुष्क भूमि में भी सफलता से वृद्धि करता है, यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है एवं अंतरवर्तीय फसल के लिए उपयुक्त है। मोरिंगा के पत्ते और फल पशुचारे के रूप में उच्च गुणवत्ता प्रदान करते हैं। बागानों और फसलों में हरित खाद के रूप में उपयोग कर के मिट्टी की उर्वरता बढ़ाई जाती है। मोरिंगा की जड़ और पत्तों का घोल जैविक कीट नाशक की तरह कार्य करता है। इसकी तेज वृद्धि और कम जल आवश्यकता इसे टिकाऊ कृषि का उपयुक्त पौधा बनाती है।

औद्योगिक एवं आर्थिक उपयोग: बीजों से प्राप्त बेन् ऑयल का उपयोग, इत्र साबुन, क्रीम, एवं अवन्तिकारक (lubricant) आदि सौंदर्य प्रसाधनों के उद्योग में महत्वपूर्ण घटक के रूप में किया जाता है, औषधि निर्माण के लिए विशेष तेल के रूप में, पत्तों से बनी पाउडर और कैप्सूल का वैश्विक स्वास्थ्य पूरक के रूप में औषधीय उद्योग में बड़ी मांग हैं। इसकी लकड़ी हल्की और लचीली होने के कारण छोटे निर्माण कार्यों व खिलौना उद्योग में उपयोग होती है। बीज–चूर्ण प्राकृतिक स्कंदक का कार्य करता है अतः यह जलशोधन उद्योग में भी सहायक है। उच्च पोषण युक्त मोरिंगा पशु पालन उद्योग का अच्छा आधार है। उपरोक्त औद्योगिक उपयोगों को देखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों मे मोरिंगा आधारिक लघु उद्योग आय सृजन का प्रभावी साधन बन सकता हैं।

पौष्टिक उपयोग : मोरिंगा को सुपर फूड का दर्जा प्राप्त है।

पत्तियाँ विटामिन ए, बी, सी, डी तथा कैल्शियम, पोटैशियम, आयरन और एंटी ऑक्सीडेंट से भरपूर है। फली/फल फाइबर और खनिजों का उत्तम स्रोत है। बीज की गिरी प्रोटीन और स्वास्थ्य वर्धक वसा से युक्त है एवं इनके सेवन से कुपोषण से लड़ने में प्रभावी सहायता मिलती है। कई स्थानों पर इसे पोषण योजनाओं में शामिल किया जा रहा है।

पर्यावरणीय एवं सामाजिक उपयोग: मोरिंगा का पेड़ तेजी से बढ़ता है और कम समय में बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन प्रदान करता है। मिट्टी क्षरण रोकने में मोरिंगा अत्यंत उपयोगी है। सामाजिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में मोरिंगा की खेती रोजगार का स्रोत बन रही है।

जल शुद्धिकरण में उपयोग: यह मोरिंगा का सबसे

वैज्ञानिक और विशिष्ट उपयोग है। बीजों में पायी जाने वाली प्राकृतिक स्कंदक गुण गंदे पानी को साफ करती हैं। कई देशों में मोरिंगा के बीजों का उपयोग ग्रामीण जल शोधन प्रणाली में किया जा रहा है।

मोरिंगा के पाक और घरेलू उपयोग

कुपोषण उन्मूलन में भूमिका: विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ) द्वारा मोरिंगा को विकास शील देशों में कुपोषण से लड़ने वाले पौधों में शामिल किया गया है। बच्चों, गर्भवती महिलाओ एवं वृद्धों के लिए यह अत्यंत उपयोगी है।

निष्कर्ष:

यह लेख स्पष्ट करता है कि मोरिंगा का पेड़ वास्तव में एक बहुउपयोगी एवं बहु आयामी वृक्ष है यह केवल भोजन और औषधि का स्रोत ही नहीं, बल्कि पोषण, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, पर्यावरण संरक्षण, जल शोधन और अर्थव्यवस्था तक में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसकी तेजी से बढ़ने की क्षमता और बहुउपयोगिता इसे आधुनिक युग में टिकाऊ विकास का प्रमुख वृक्ष बनाती है। भविष्य में इसके वैज्ञानिक अनुसंधान और व्यावसायिक विस्तार से सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

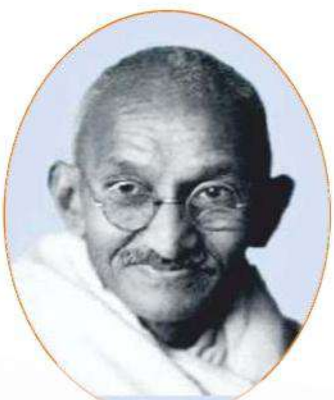

हिंदी भाषा की उन्नति का अर्थ है
राष्ट्र और जाति की उन्नति।
-महात्मा गांधी

शहतूत बागान में हानिकारक पीड़कों का प्रकोप एवं उनका नियंत्रण

डॉ. सहदेव चौहान* एवं डॉ. अरविंद कुमार**
*मूल बीज फार्म, केन्द्रीय रेशम बोर्ड, देहरादून
**भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रेशम उत्पादन एक कृषि आधारित व्यवसाय है जिसमें रेशमकीट (*बॉम्बिक्स मोरी* एल.) को शहतूत (*मोरस* प्रजाति) की पत्तियां खिलाकर पाला जाता है। कृषि आधारित अन्य फसलों की भांति हानिकारक पीड़क शहतूत के पत्तों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता दोनों को दुष्प्रभावित कर रेशमकीट व्यवसाय से होने वाले लाभ को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से क्षति पहुंचाते हैं। शहतूत की वृद्धि में कीट एवं अन्य विनाशकारी गैर–कीट पीड़क मुख्य रूप से हानि पहुंचाते हैं। कीट पीड़कों के द्वारा गंभीर आक्रमण की अवस्था में शहतूत की पत्तियों की उत्पादन क्षमता में 30% से भी अधिक की क्षति देखी गयी है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव रेशम कीट पालन एवं रेशम उत्पादन पर पड़ता है। शहतूत बागानों में अनेक प्रकार के विनाशकारी पीड़कों का प्रकोप देखा गया है, और इन पीड़कों की आदत व क्षति करने के लक्षण के अनुसार इनको मुख्यत: तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है, जैसे रस चूसने वाले, पत्ती खाने वाले तथा तना / जड़ खाने वाले पीड़क। इनमें से पत्ती खाने वाले पीड़क कीट गंभीर हानिकारक है, ये शहतूत बागानों के पौधों को निष्पत्रित कर देते हैं। अतः शहतूत पौधों को हानि पहुंचाने वाले पीड़कों को समय–समय पर नियंत्रित करना अत्यंत आवश्यक है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए शहतूत के हानिकारक पीड़कों के आक्रमण काल, उनका वितरण, लक्षण, जीवन चक्र एवं नियंत्रण के उपायों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कृषकों के लिए शहतूत की गुणवत्तायुक्त पत्तियों के अधिक उत्पादन में सहायक सिद्ध होगा।

1. शहतूत पर्ण बेधक, *ग्लाइफोड्स पायलोएलिस* वॉकर:

यह लेपिडोप्टेरा गण (आर्डर) के क्रेम्बिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : इस कीट का प्रकोप जून से अक्टूबर तक अत्यधिक देखा गया है।

वितरण : प्रायः यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : कीट का लार्वा पौधे की पत्तियों को आपस में जोड़कर गुच्छा बना देता है तथा अंदर ही अंदर खाकर उसको निष्पत्रित कर देता है साथ ही अपने मल से उसे गंदा कर देता है। पौधे के शीर्षस्थ कोमल पत्ती / कली को प्रायः लार्वा प्राथमिकता से खाता है। यह पीड़क कीट रेशमकीट रोगाणुओं जैसे *बैवेरिया बेसियाना* एवं संक्रमित फ्लेचरी के रोगाणुओं का भी परपोषी है।

जीवन चक्र : वयस्क शलभ (मॉथ) रात्रिचर होता है और सायं के समय अधिक सक्रिय होने के साथ ही शहतूत पौधे के टहनियों में यह ऊपरी दिशा में टेढ़ी–मेढ़ी शैली में उड़ता है। इस पीड़क कीट के वयस्क का आकार लगभग 1.5 से.मी. एवं रंग भूरा होता है। इसके अग्रपंख त्रिकोणाकार, धूसर श्वेत जबकि पश्चपंख अर्ध वृत्ताकार एवं श्वेत होते है। पंखों का फैलाव लगभग 3.5 – 3.6 से. मी. होता है। प्रत्येक मादा शलभ पत्ती की निचली सतह के मध्य–शिरा के साथ–साथ 2 – 5 समूह में 150 से अधिक एक समान आकार के अंडे देती है। प्रायः अंडे देने की अवधि सायंकाल से प्रारंभ होकर रातभर रहती है। अंडों का स्फुटन 3 – 5 दिनों में होता है। स्फुटन के बाद, प्रथम निरुप डिंभक पत्ती की निचली सतह से क्लोरोफिल को **खुरच कर खाता** है। जब डिंभक (लार्वा) द्वारा पत्ती खाने के साथ ही क्लोरोफिल उसके शरीर में समागमित होकर इसके शरीर का रंग हरा हो जाता है। पूर्ण वयस्क डिंभक हरे रंग का होता है तथा उसके शरीर की ऊपरी सतह पर काले रंग के धब्बे होते हैं। पूर्ण डिंभकीय अवधि चार निर्मोचन अवधि सहित 18 – 20 दिनों की होती है। प्यूपा अवधि 10 – 11 दिनों की होती है। प्यूपा लगभग 1.6 – 1. 8 से. मी. लंबा, पतला एवं भूरे रंग का होता है। प्यूपीकरण जाले युक्त पत्तों, तने पर या जमीन पर गिरी पत्तियों के

बीच में होता है। *ग्लाइफोड्स पायलोलिस* वर्ष के दौरान 4 – 5 जीवन–चक्र सामान्यतया जून से अक्टूबर तक पूर्ण करता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. शीत–निष्क्रियता में पड़े हुए कीड़े के प्यूपों और रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए सूखे हुए शहतूत के पत्तों को इकट्ठा कर जला देना चाहिए।
2. शीतकालीन जुताई करें ताकि शीत–निष्क्रियता में पड़े हुए कीड़े और रोगजनकों की विभिन्न अवस्थाएँ सूर्य ताप व परभक्षियों द्वारा नष्ट की जा सके।
3. प्रकाश प्रपंच को लगाकर प्रौढ़ शलभों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
4. मोनोक्रोटोफॉस 0.01 % या 0.05 % फॉस्फामिडोन का शहतूत की पत्तियों पर छिड़काव कर पीड़क से पत्तियों के नुकसान को 80 – 90 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।
5. *ट्राइकोग्रामा कीलोनस* प्रजाति (अंड डिंभकीय परजीव्याभ) का प्राकृतिक अवस्था में उपयोग कर पीड़क को नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही *एपेंटेलिस* प्रजाति के परजीव्याभ को भी वृहत स्तर उपयोग में लिया जा सकता है।

2. रोमिल इल्ली, *स्पाइलोसोमा डलबर्जिया* मूर:

यह लेपिडोप्टेरा गण के आर्किडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : इस कीट का प्रकोप जून से अक्टूबर तक देखा गया है।

वितरण : प्रायः यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : लार्वा प्रारम्भिक अवस्था में समूह में पत्ती को खाते हैं एवं जैसे– जैसे बड़े होते हैं एकल रूप से पौधे की पत्ती खाकर उसको निष्पत्रित कर देता है। परिपक्व लार्वा की पत्ती में छेद कर खाने की भी आदत होती है।

जीवन चक्र : वयस्क शलभ (मॉथ) पीताभ श्वेत और सिर भूरे रंग का होता है। आकार में नर शलभ मादा से छोटा होता है। यह हल्के पीले रंग का होता है। उदर गहरे पीले रोमों से ढ़की होती है। प्यूपा की सुप्तावस्था अक्टूबर में होती है।

नियंत्रण के उपाय:

1. शीत–निष्क्रियता में पड़े हुए कीड़े के प्यूपों और रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए सूखे हुए शहतूत के पत्तों को इकट्ठा कर जला देना चाहिए।
2. शीतकालीन गहरी जुताई करें ताकि शीत–निष्क्रियता में पड़े हुए कीड़े और रोगजनकों की विभिन्न अवस्थाएँ सूर्य ताप व परभक्षियों द्वारा नष्ट की जा सके।
3. प्रकाश प्रपंच को लगाकर वयस्क शलभों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
4. डाईमिथोएट 0.2 % या 0.2 % डीडीवीपी का शहतूत की पत्तियों पर छिड़काव से इल्ली नियंत्रित हो जाती है।

3. वास्प शलभ, *एमाटा पैसेलिस* (फेब):

यह लेपिडोप्टेरा गण के एमाटिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : इस कीट का प्रकोप जून से अक्टूबर तक देखा गया है।

वितरण : यह समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : प्रारंभिक अवस्था में लार्वा पत्ती की मिसोफिल सतह को क्षति पहुंचाता है। इसके लगातार प्रकोप से शहतूत में पत्ती की उत्पादकता प्रभावित होती है।

जीवन चक्र : शलभ शरीर एवं पंख भूरे काले रंग के होते हैं जिसके वक्ष एवं उदर खंड में लाल ईंट के रंग की धारियाँ होती हैं एवं पंख में पारदर्शी धब्बे होते हैं। नर दुबला पतला जबकि मादा थुलथुली होती है। वयस्क मादा 400 – 500 गोलाकार अंड़े पत्ती की निचली सतह पर समूह में देती है जिसका स्फुटन 6 – 7 दिनों में होता है। स्फुटित डिंभक पत्ती के फलक को समूह में खाते हुए उसे कंकालित कर देते है। जैसे – जैसे डिंभक बड़ा होता है यह एकल रुप से पत्तियों को खाता है। पूर्ण विकसित डिंभक लगभग 22 – 25 मि.मी. का होता है। परिपक्व डिंभक पत्तियों के बीच रेशमी बालों युक्त कोया में प्यूपा बनाता है। प्यूपा काल 10 –12 दिनों का होता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. अंडों के समूह एवं तरुण डिंभकों को एकत्रित कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।
2. प्रकाश प्रपंच को लगाकर वयस्क शलभों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
3. 0.2% डीडीवीपी का शहतूत की पत्तियों पर छिड़काव से इल्ली नियंत्रित हो जाती है।

4. आलमंड पर्ण भृंग, *मिमेस्ट्रा सायेनूरा* हॉप:

यह कोलिओप्टेरा गण के क्रायसोमेलिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : इस कीट का प्रकोप अप्रैल से जून तक देखा गया है।

वितरण : यह शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : शहतूत बागानों एवं पौधशालाओं में वयस्क पत्तियों के निचले सतह पर झुण्ड में रहते हैं एवं आक्रमण कर पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें निष्पत्रित कर देते है। इसके अधिक आक्रमण की अवस्था में केवल पत्तियों की मध्य शिरा ही शेष रह पाती है।

जीवन चक्र : अप्रैल माह के अंत में वयस्क विशाल झुण्ड में हजारों की संख्या में शहतूत के पौधों पर पत्तियों को खाते है। वयस्क आकार में छोटा होता है परंतु एंटीना काफी बड़ा होता है। इनका एलीट्रा हल्के पीले व इसका पश्च भाग बैंगनी नीले रंग का होता है। उदर अधर से नीलापन लिए हुए काला एवं चमकदार होता है। वयस्क मानसून के आने के शुरुआत में मैथुन करते है और अंडे समूह में देते है। डिंभक अवस्था भूमि में गुजरती है।

नियंत्रण के उपाय:

1. बसंत फसल के बाद भूमि में गहरी जुताई करनी चाहिए।
2. फार्म का रखरखाव व सफाई रखनी चाहिए और बाड़ के किनारे पीड़क के एकांतर परपोषी पौधों ना लगाए।
3. 0.05% साइपरमेथरिन या 0.1% मोनोक्रोटोफॉस का शहतूत की पत्तियों पर छिड़काव प्रभावी होता है ।

5. मिली बग, *मैकोनेलीकोकस हिर्सुटस* (ग्रीन):

यह हेमिप्टेरा गण के स्यूडोकोक्सीडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : इस कीट का प्रकोप मार्च से सितंबर (अधिकतम अप्रैल से जून) तक देखा गया है ।

वितरण : प्रायः यह समशीतोष्ण व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाता है ।

लक्षण : यह पीड़क कीट शाखाओं एवं ऊपर की कोमल पत्तियों का रस चूसते हैं एवं पौधे को हानि पहुंचाते हैं। पौधे के ऊपर वाली पत्तियां सिकुड़कर गुच्छे जैसे तथा चपटी व विकृत हो जाती है। साथ ही वयस्क मिली बग पत्तियों, तनों के ऊपर तरल माल छोड़ता है जिसके ऊपर कवक के आक्रमण से पत्ती की सतह काली पड़ जाती है तथा पौधे की वृद्धि रूक जाती है। फलस्वरूप पत्ती की उत्पादकता एवं गुणवत्ता दोनों ही प्रभावित होती है। यह विषाणु जनित टुकरा रोग का वाहक है।

जीवन चक्र : वयस्क मादा 250 – 300 की संख्या में अंड थैलियों में अंडे देती है जो उदर के सिरे पर लगी रहती है। अंडे आकार में लंबे और नारंगी रंग के होते है। लगभग 5 दिनों में अंडों का स्फुटन होकर निम्फ बन जाता है। निम्फ मोम जैसे पदार्थ से ढ़का रहता है और 2 – 3 बार निर्मोचन करता है। यह कीट लगभग 25 दिनों में जीवन चक्र पूर्ण कर लेता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. ग्रसित पौधों की पत्तियों व शाखाओं को तोड़कर जलाना चाहिए या गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए।
2. 0.2% डीडीवीपी (नुवान) को 0.5% साबुन के घोल के साथ छिड़काव इसके निदान में सहायक है ।
3. जैव नियंत्रण हेतु इसके प्राकृतिक शत्रु कोक्सीनिलिड परभक्षी भृंग (*क्रिप्टोलेमस मोन्ट्रोजियेरी*) को प्रक्षेत्र में छोड़ने से टुकरा रोग नियंत्रित हो जाता है ।

6. थ्रिप्स, *स्यूडोडेंड्रोथ्रिप्स मोरि निवा*

यह थाइसोनोप्टेरा गण के थ्रिपिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : प्रायः साल भर, किंतु मार्च से अप्रैल तक कीट का प्रकोप अत्यधिक होता है।

वितरण : यह समशीतोष्ण व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : यह पीड़क पौधों की कोमल पत्तियों का रस चूसते है एवं विषाणु रोग फैलते हैं जिसके कारण ऊपर वाली पत्तियां सिकुड़ जाती हैं और उनका विकास रुक जाता है। अत्यधिक आक्रमण में पत्तियों में पीले धब्बे होने के बाद पत्तियाँ सूख जाती है। जिसका प्रभाव रेशमकीट पालन पर पड़ता है।

जीवन चक्र : नर हल्के पीले भूरे एवं मादा गहरे भूरे रंग के होते है मादा कीट नर से लंबी होती है। और अल्प समय में ही गुणन द्वारा अपनी जनसंख्या बढ़ा लेते है। पत्ती की निचली सतह पर मादा लगभग 30 –50 अंडे देती है। अंडे 6 – 8 दिनों में स्फुटित हो जाते है। निम्फ रंग में पीलापन लिए होता है। निम्फ का 15 – 18 दिनों में चार बार निर्मोचन होता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई करने पर निम्फ एवं प्रौढ़ धुल जाते है।
2. बागानों में खरपतवार की निराई करते रहने से पीड़क के वैकल्पिक पोषक समाप्त हो जाते है।
3. 0.02% डीडीवीपी का शहतूत की पत्तियों पर छिड़काव उपयोगी है। डिटर्जेंट साबुन के घोल का छिड़काव भी कारगर है।

7. दीमक, *ओडेंटोटर्मिस* प्रजाति:

यह आइसोप्टेरा गण के टरमिटिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : प्रायः वर्ष भर होता है ।

वितरण : यह समशीतोष्ण व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है।

लक्षण : इस पीड़क के आक्रमण से पौधे की जड़ों तथा तने को आक्रमण से भारी नुकसान पहुंचता है। जिसके चलते पत्तियों तक भोज्य पदार्थ, पानी व अति आवश्यक पौष्टिक तत्वों के पहुंचने का संबंध खत्म हो जाता है। इस कारण से पौधों का विकास कम हो जाता है। अत्यधिक आक्रमण से पौधें मर भी जाते है।

जीवन चक्र : केवल लैंगिक रूप से परिपक्व नर एवं मादा में पंख होते है। प्रजनन क्रिया के बाद पंख गिर जाते है। प्रौढ़ रानी हजारों की संख्या में एकल रुप से अंडे देती है। अंडों के स्फुटन की अवधि 24 – 90 दिनों तक होती है, जो जलवायु के आधार पर विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। कॉलोनी के श्रमिक द्वारा बागानों एवं पौधशालाओं को हानि पहुंचायी जाती है ।

नियंत्रण के उपाय:

1 कॉलोनी में रानी दीमक को तलाश कर नष्ट कर देना चाहिए। इसके अलावा सूखी प्रूनिंग की टहनियां, सूखी हुई घास (खरपतवार) तथा सूखे हुए पेड़–पौधे ये सभी शहतूत बागान से हटा देना चाहिए। कच्चे गोबर की खाद कभी भी उपयोग में नहीं लानी चाहिए ।

2 निराई–गुड़ाई के अलावा गहरी खुदाई एक फीट तक वर्ष में दो – तीन बार करनी चाहिए, जिससे की दीमकों के रास्ते (टनल्स) खत्म होते रहें व दीमकों का आवागमन बन्द हो जाए।

3 नये पौधारोपण के समय दीमकों के हमले से बचने के लिए पेड़ – पौधों की जड़ों में दीमक नाशक दवा (टर्मिटिसाइड) का प्रयोग किया जाए। फ्लड सिंचाई इसके हमले को देखते हुए देना लाभदायक रहता है।

8. पर्ण भृंग, *अल्टीका हिमेंसिस* शुक्ला

यह कोलिओप्टेरा गण के क्राइसोमिलिडी कुल का कीट है ।

आक्रमण काल : मई से नवंबर तक होता है।

वितरण : यह शीतोष्ण व समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : यह पीड़क झुण्ड में रहकर शहतूत की पत्तियों पर आक्रमण कर उसे निष्पत्रित कर देता है और केवल पत्ती

की मध्य शिरा एवं कुछ शिराएं ही शेष बचती है। प्रायः इसका प्रकोप पौधे के मध्य भाग में होता है।

जीवन चक्र : प्रौढ़ आकार में छोटा, चमकदार एवं नीली कृष्ण चमक लिए होता है। नर मादा कीट से छोटा होता है। और अल्प समय में ही गुणन द्वारा अपनी जनसंख्या बढ़ा लेते है। पत्ती की निचली सतह पर मादा लगभग 30 – 50 अंडे देती है। अंडे 6 – 8 दिनों में स्फुटित हो जाते है। निम्फ रंग में पीलापन लिए होता है। निम्फ का 15 – 18 दिनों में चार बार निर्मोचन होता है ।

नियंत्रण के उपाय:

1. अल्टीका की अन्य प्रजातियों में 5% कार्बराइल 20 किलो / हेक्ट. की दर से अनुशंसा की गई है ।

9. विवील, *एपिसोमस लैसर्टा फैब्रिसियस*

यह कोलिओप्टेरा गण के करकुलिओनिडी कुल का कीट है।

आक्रमण काल : अगस्त से अक्टूबर तक होता है ।

वितरण : यह समशीतोष्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

लक्षण : इसके मुखांग काटने एवं चबाने प्रकार के होने के कारण यह पत्ती के फलक के किनारे एवं मध्य में तेजी से खाता है। यह बहुत सक्रिय होता है एवं थोड़े से आहट से अपने बचाव में पत्ती से जमीन पर गिर जाता है। अधिक संख्या में प्रकोप की दशा में यह शहतूत बागान को बहुत हानि पहुंचता है।

जीवन चक्र : प्रौढ़ कीट आकार में बड़ा, सक्रिय एवं हल्के भूरे या धूसर रंग का होता है। नर, मादा कीट से छोटा होता है। मादा कीट जमीन के अंदर समूह में अंडे देती है और कम समय में ही अपने संख्या तेजी से बढ़ा लेते है।

नियंत्रण के उपाय:

1 ग्रसित पौधों की शाखाओं को तिरछी कर छड़ी से पीटने से नीचे रखे पात्र में प्रौढ़ को एकत्रित कर नष्ट करना या मिट्टी के तेल व सूखी घास से जला देना चाहिए।

2 निराई – गुड़ाई के अलावा गहरी जुताई पीड़क के नियंत्रण में उपयोगी होता है।

10.जमीनी घोंघा, *एरियोफेंटा लेविपेस मूलर*

यह मोलस्का फाइलम के गेट्रोपोड़ा श्रेणी में आता है।

आक्रमण काल : जुलाई से सितंबर में होता है।

वितरण : यह समशीतोष्ण व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाता है ।

लक्षण : यह गैर – नाशीकीट है। घोंघा पौधों की पत्ती पर रेंगते हुए उसे खाकर उसमें छिद्र कर देता है। हालांकि यह कम नुकसान करने वाले पीड़कों में आता है। परंतु आशंका है, कि यह भविष्य में शहतूत को अधिक नुकसान पहुंचाने वाले पीड़कों की श्रेणी में आ सकता है।

जीवन चक्र : यह पीड़क एक कैल्सियमयुक्त कवच में रहता है। कवच का रंग सफेद एवं तीन तिरछी सर्पनुमा धारियां होती है। इस कवच की चौड़ाई 23 – 28 मि.मी. एवं ऊंचाई लगभग 15 मि.मी. होती है। एक मादा द्वारा लगभग 50 – 100 अंडे नम स्थान पर समूह में दिए जाते है।

नियंत्रण के उपाय:

1. शहतूत बागानों में खरपत की निराई करते रहने से पीड़क के वैकल्पिक पोषक समाप्त हो जाते है।
2. यांत्रिक रुप से प्रौढ़ एवं उनके अंडों को एकत्रित कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।
3. घोंघे की विभिन्न अवस्थाओं को नमक के घोल में डुबोकर नियंत्रित किया जा सकता है।
4. अनेक रसायनिक पदार्थ जैसे आर्सेनिक, कॉपर कंपाउंड, साधारण नमक, क्लोरिनेटेड हाइड्रोकार्बन, ऑर्गेनोफास्फेट, व मैटाएल्डिहाइड इसके कार्बामेट नियंत्रण हेतु काम में लिए जाते है, परंतु मैटाएल्डिहाइड से इस पीड़क का प्रभावी प्रबंधन किया जाता है। हालांकि कोशिश की जाए, कि इन रसायनों को कम से कम काम में लेते हुए जैविक उपचार एवं प्रभावी प्रबंधन अपनाने चाहिए।

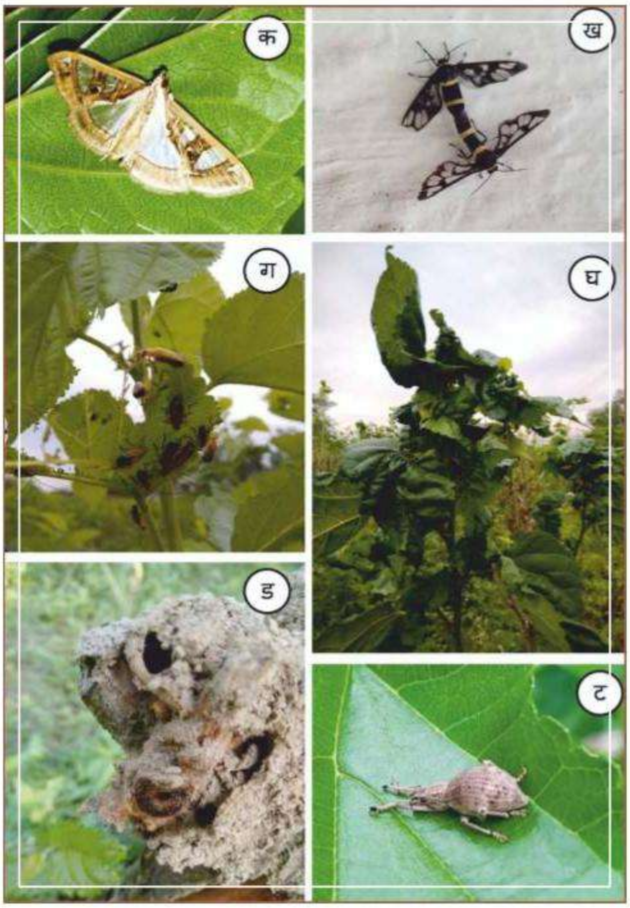

शहतूत के पीड़क कीटः क– शहतूत पर्ण बेधक, *ग्लाइफोड्स पायलोएलिस* वॉकर; ख– वास्प शलभ, *एमाटा पैसेलिस* (फेब); ग– आलमंड पर्ण भृंग, *मिमेस्ट्रा सायेनूरा* हॉपय घ– मिली बग, *मैकोनेलीकोकस हिर्सुटस* (ग्रीन): ड– दीमक, ओडेंटोटर्मिस प्रजाति; ट– विवील, *एपिसोमस लैसर्टा* फैब्रिसियस

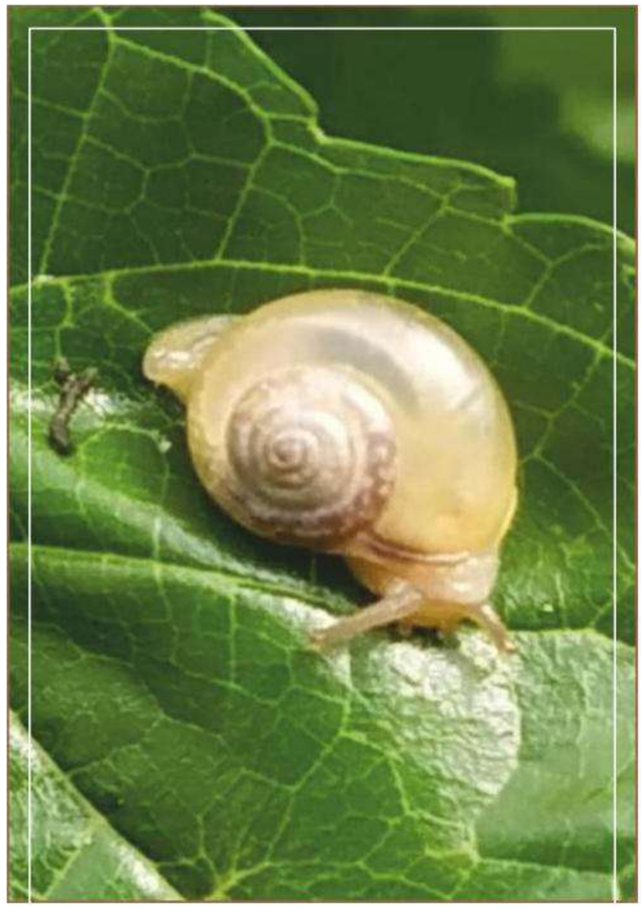

शहतूत का गैर–नाशीकीट; जमीनी घोंघा, *एरियोफेंटा लेविपेस* मूलर

भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं
और हिंदी महानदी।
-रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अश्वगंधा (*विथानिया सोम्नीफेरा*): एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा

डॉ. शिव पाल एवं डॉ. स्वर्ण लता
भा.वा. अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

अश्वगंधा (असगंध, असुगंध एवं भारतीय जिनसेंग) शब्द संस्कृत के ''अश्व'' (घोड़ा) और ''गंधा'' (गंध) से मिलकर बना है, जो इसकी जड़ से आने वाली विशिष्ट गंध को दर्शाता है। साथ ही, यह नाम इसकी बलवर्धक और जीवनी शक्ति बढ़ाने वाली विशेषता को भी दर्शाता है। अश्वगंधा एक महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक औषधीय पौधा है जो भारत, मध्य पूर्व और अफ्रीका के शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। अश्वगंधा प्राचीन काल से भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में उपयोग में लाया जा रहा है। इस पौधे की जड़ें प्रमुख रूप से औषधीय गुणों के लिए जानी जाती हैं। अश्वगंधा का उपयोग तंत्रिका संबंधी विकारों, तनाव, अनिद्रा, थकावट, और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु किया जाता है। स्थानीय लोग इस पौधे का उपयोग ईंधन और चारे के रूप में भी करते है।

विवरणः अश्वगंधा का पौधा 35 से 75 सेमी ऊँचा होता है। तना आरंभ में हरा व कोमल होता है, बाद में लकड़ी जैसा कठोर हो जाता है। पत्तियाँ आमतौर पर 10–12 सेमी तक लंबी और अण्डाकार हल्के हरे रंग की होती हैं। फूल छोटे, हरे और घंटी के आकार के होते हैं। इसका फल आकार में छोटा, गोल और चिकनी सतह वाला होता है, जिसका रंग नारंगी–लाल तथा चमकदार होता है। फल के अंदर अनेक छोटे पीले या भूरे बीज होते हैं।

अश्वगंधा का पौधा

वितरण एवं आवासः अश्वगंधा अफ्रीका, भारत, इराक, दक्षिण ईरान, सीरिया, तुर्की, फिलिस्तीन, अरब और पाकिस्तान के शुष्क भागों में पाया जाता है। यह भारत में गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश की निचली ऊँचाई वाली क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू–कश्मीर सहित पर्वतीय क्षेत्रों में 600–1500 मीटर समुद्रतल से ऊपर पाया जाता है।

अश्वगंधा का फूल

औषधीय गुणः अश्वगंधा के समस्त भाग जड़, छाल, पत्तियाँ, फल एवं बीज औषधीय प्रयोजनों हेतु प्रयुक्त होते हैं। अश्वगंधा आयुर्वेद में एक अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है, जिसे ''भारतीय जिनसेंग'' भी कहा जाता है। इसका उपयोग विभिन्न यूनानी दवाओं और आयुर्वेदिक योगों में होता है, विशेषकर च्यवनप्राश में। अश्वगंधा थकान, कमजोरी, और मानसिक तनाव को दूर करता है और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। सूजन और जोड़ों के दर्द में लाभदायक है और मधुमेह और हृदय रोग के जोखिम को कम कर सकता है। अश्वगंधा की जड़ें एवं पत्तियों का उपयोग दूध देने वाले पशुओं की शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए किया जाता है। यह पशुओं में थकावट, कमजोरी तथा संतानोत्पत्ति संबंधित

समस्याओं में उपयोगी मानी जाती है।

बाजार मूल्यः अश्वगंधा के सूखी जड़ों का मूल्य मार्च 2025 में बेरहमपुर मंडी में रु. 450/– प्रति किलोग्राम, कोलकाता मंडी में रु. 395/– प्रति किलोग्राम, और सिलिगुड़ी मंडी में रु. 690/– प्रति किलोग्राम था।

खेती की तकनीकेंः इस प्रजाति की खेती के लिए उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु परिस्थितियाँ उपयुक्त हैं। यह रेतीली दोमट तथा हल्की लाल मिट्टी में अच्छे से विकसित होता है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए 660 से 750 मिमी वर्षा उपयुक्त रहती है। अश्वगंधा के पौधे को बीज द्वारा उगाया जा सकता है। एक हेक्टेयर भूमि के लिए 5–6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है और जुलाई में सीधी बुवाई की जाती है। नर्सरी में पौधे तैयार करने के लिए, अप्रैल–जून में नर्सरी क्यारियों में 5 से.मी. की दूरी पर बीज बोए जाते हैं। अंकुरण 6–7 दिनों में शुरू होकर 2 सप्ताह में पूरा हो जाता है, जो पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

संरक्षण एवं प्रबंधनः मानव जनसंख्या में वृद्धि और औषधीय, जलाऊ लकड़ी और चारे के लिए इस पौधे के निरंतर अनियोजित अतिदोहन के परिणामस्वरूप अश्वगंधा की प्रजाति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है एवं इसकी प्राकृतिक आबादी में गिरावट देखी जा रही है। इसलिए इस पौधे को स्वस्थाने और पर–स्थाने संरक्षण दोनों तरीकों से संरक्षित करना अत्यंत आवश्यक है। इसके प्रभावी संरक्षण के लिए इसकी खेती की उन्नत तकनीकों का विकास और प्राकृतिक आवास स्थलों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव हो सकता है जब स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

अश्वगंधा का फल

राष्ट्र की एकता को यदि बनाकर रखा जा सकता है
तो उसका माध्यम हिंदी में ही हो सकता है।
– सुब्रह्मणयम भारती

पुनर्वासित कोयला खनन क्षेत्रों में वनीकरण के माध्यम से कार्बन पृथक्करण व पर्यावरण सुधार

श्री चन्द्र शर्मा, डॉ.ए.एन. सिंह एवं श्री अभिषेक खन्ना
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद मुख्यालय, देहरादून

प्रस्तावना

कोयला खनन ऐतिहासिक रूप से आर्थिक विकास और ऊर्जा सुरक्षा से जुड़ा रहा है, लेकिन इसके साथ–साथ खनन गतिविधियों, बड़े पैमाने पर भूमि क्षरण, वनस्पति ह्रास और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में वृद्धि का कारक रही है। खनन गतिविधियों में वृक्ष कटान, मिट्टी और चट्टानों को बड़े स्तर पर हटाए जाने की वजह से प्राकृतिक पारितंत्र बाधित होता है और पहले से संचित कार्बन वायुमंडल में मुक्त हो जाता है। परिणामस्वरूप, कोयला खनन को अक्सर नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव की दृष्टि से देखा जाता है।

हालाँकि, पर्यावरणीय स्वीकृतियाँ, वन स्वीकृति तथा अन्य वैधानिक अनुमतियाँ खनन कंपनियों पर बाध्यकारी होती हैं कि वे प्रभावित भूमि का पुनर्वास करें। पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय नियमित निरीक्षण और रिपोर्टिंग के माध्यम से इस प्रक्रिया की निगरानी करता है। इन नियमों के अंतर्गत अतिभारित ढेर और छोड़े गए खनन क्षेत्रों को पुनः सुधार कर उन पर वृक्षारोपण किया जाता है। एक बार पुनर्वास होने के बाद, ये क्षेत्र पर्यावरणीय क्षति के स्रोत से बदलकर जलवायु सुधार में सहायक संसाधन बन सकते हैं।

कार्बन पृथक्करण की अवधारणा

कार्बन पृथक्करण वह प्रक्रिया है जिसमें पौधे प्रकाश संश्लेषण के दौरान वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर उसे अपने जैविक ढाँचे में समाहित कर लेते हैं और दीर्घकाल तक संचित रखते हैं। यह कार्बन भूमि के ऊपर के भागों जैसे तना, शाखाएँ और पत्तियाँ, तथा भूमि के नीचे जड़ों में संग्रहित होता है। समय के साथ गिरी हुई पत्तियाँ, जड़ अवशेष और मृत जैव पदार्थ सूक्ष्मजीवों की क्रिया से विघटित होकर मृदा में मिल जाते हैं और मृदा कार्बनिक कार्बन का निर्माण करते हैं। यही मृदा भंडार सबसे बड़ा और सबसे स्थायी कार्बन भंडार होता है, जिससे पारितंत्र प्रभावी कार्बन सिंक के रूप में कार्य करता है।

चूँकि कार्बन डाईऑक्साइड वैश्विक तापवृद्धि की प्रमुख गैस है, इसलिए वायुमंडल से इसका पृथक्करण जलवायु परिवर्तन को धीमा करने में सहायक होता है। वन पारितंत्र पृथ्वी के सबसे प्रभावी प्राकृतिक कार्बन सिंक माने जाते हैं। जब क्षतिग्रस्त खनन भूमि को वन आवरण में बदला जाता है, तो यह जलवायु लाभ तत्काल और दीर्घकालिक दोनों होता है।

प्रजाति चयन का महत्व

प्रजाति चयन कार्बन पृथक्करण की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक है। खनन क्षेत्र के विभिन्न भागों के लिए अलग–अलग रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं। तीव्र ढाल पर मिट्टी बाँधने और कटाव रोकने के लिए घास, झाड़ियाँ और मजबूत जड़ प्रणाली वाली देशी प्रजातियाँ लगाई जाती हैं। मध्यम ढाल पर तेजी से बढ़ने वाली अग्रणी प्रजातियाँ प्रारंभिक जैवभार बढ़ाती हैं। समतल और स्थिर क्षेत्रों में दीर्घजीवी, दृढ़ काष्ठ वाली देशी प्रजातियाँ दीर्घकालिक कार्बन पृथक्करण सुनिश्चित करती हैं।

व्यवहार में प्रारंभिक अवस्था में *सेंच्रस्किलियारिस* (अंजन घास), *सेंच्रसेटिगेरस* (काला धामन), *अप्लुडामुटिका* (भोंग्ला), *एरिस्टिडासेटेसिया* (झाड़ू घास), *डाइकैंथियमएनुलैटम* (मारवेल घास), *स्टाइलोसांथेशामाता* (हमाटा घास), *क्राइसोपोगोनजिजानियोइड्स* (खस) जैसी घासें मिट्टी स्थिरीकरण करती हैं। इसके बाद *अल्बिजियालेबेक* (साइरस), *अल्बिजिया प्रोसेरा* (सफेद साइरस), *एजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम), *मेलिन आर्बोरिया* (गम्हर), *सेनेगलिया कैटेचू* (खैर), *पोंगामियापिन्नाटा* (करंज), *बौहिनिया वेरिएगाटा* (कचनार), *कैसिया फिस्टुला* (अमलतास), बाँस (*डेंड्रोकैलामस स्ट्रिक्टस*) इत्यादि जैसी तेजी से बढ़ने वाली स्थानीय प्रजातियाँ लगाई जाती हैं।

दीर्घकालिक स्थिर कार्बन भंडारण के लिए *डल्बर्गिया सिस्सू* (शीशम), *शोरिया रोबुस्टा* (साल), *टेक्टोना ग्रैंडिस* (सागवान), टर्मिनालिया प्रजातियाँ जैसी देशी दृढ़ काष्ठ वाली प्रजातियाँ और फाइकस प्रजातियाँ उपयुक्त मानी जाती हैं।

कार्बन पृथक्करण का आकलन

कार्बन पृथक्करण का आकलन यह जानने के लिए किया जाता है कि किसी क्षेत्र में पेड़–पौधों और मिट्टी में कितना कार्बन जमा है। इसके लिए जलवायु परिवर्तन पर अंतर–सरकारी पैनल द्वारा मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय विधियों का उपयोग किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में नमूना प्लॉट बनाए जाते हैं, जहाँ पेड़ों के तने का व्यास और ऊँचाई मापकर *एलोमेट्रिक* समीकरणों की सहायता से जैवभार का अनुमान लगाया जाता है। भारत में इसके लिए भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा विकसित मानक समीकरणों का प्रयोग किया जाता है।

जड़ों में मौजूद कार्बन का आकलन रूट–टू–शूट अनुपात से किया जाता है, जबकि पत्तियाँ, मृत लकड़ी और मिट्टी के नमूनों से मृदा कार्बनिक कार्बन का परीक्षण किया जाता है। सभी स्रोतों के कार्बन को जोड़कर कुल पारितंत्र कार्बन निकाला जाता है और इसे कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य में बदलकर क्षेत्र की कार्बन पृथक्करण क्षमता का आकलन किया जाता है।

कार्बन से परे अतिरिक्त लाभ

कार्बन पृथक्करण के अलावा पुनर्वासित खनन क्षेत्रों से अनेक अन्य लाभ भी प्राप्त होते हैं। जैव विविधता में वृद्धि होती है और पक्षी, कीट, सरीसृप तथा छोटे स्तनधारी पुनः पुनर्वासित खनन क्षेत्रों में लौटते हैं। जल बहाव, कटाव और गाद जमाव में कमी आती है। धूल नियंत्रण से वायु गुणवत्ता सुधरती है और हरित आवरण स्थानीय तापमान को नियंत्रित करता है। सामाजिक दृष्टि से ये क्षेत्र रोजगार, ईंधन काष्ठ, चारा और गैर–काष्ठ वन उत्पाद भी उपलब्ध कराते हैं।

चुनौतियाँ और व्यवहारिक स्थिति

अपनी संभावनाओं के बावजूद, पुनर्वासित कोयला खनन क्षेत्रों में कार्बन पृथक्करण कई चुनौतियों का सामना करता है। शुरुआती वर्षों में पौधों की जीवित रहने की दर कम होती है, क्योंकि मिट्टी की गुणवत्ता खराब होती है, खनन मलवा उथली, पोषक तत्वों से विहीन या पथरीली होती है, रखरखाव अपर्याप्त होता है, तथा चराई और आग का खतरा बना रहता है। कई बार सफलता का आकलन केवल लगाए गए पौधों की संख्या से किया जाता है, न कि उनके वास्तविक विकास से। अतः वास्तविक कार्बन पृथक्करण के लिए दीर्घकालिक संरक्षण, सिंचाई, मिट्टी सुधार, असफल पौधों का प्रतिस्थापन और निरंतर निगरानी आवश्यक है।

कोयला कंपनियों की भूमिका

कोयला कंपनियाँ यदि पुनर्वास को केवल कानूनी औपचारिकता न मानकर दीर्घकालिक पर्यावरणीय निवेश के रूप में देखें, तो कार्बन पृथक्करण को कहीं अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। वन विभाग, शोध संस्थानों और पर्यावरण विशेषज्ञों के सहयोग से प्रजाति चयन, मिट्टी प्रबंधन और निगरानी बेहतर की जा सकती है। खदान बंदी योजना, पर्यावरण प्रबंधन योजना, क्षतिपूरक वनीकरण निधि और कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व बजट इस कार्य के लिए प्रमुख वित्तीय स्रोत हो सकते हैं।

निष्कर्ष

पुनर्वासित कोयला खनन क्षेत्र कार्बन पृथक्करण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन दुष्प्रभावों से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वैज्ञानिक रूप से नियोजित पुनर्वास से ये क्षेत्र धीरे–धीरे स्थायी कार्बन सिंक में परिवर्तित हो सकते हैं। इस प्रकार कोयला खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय क्षति को पूरी तरह मिटाया तो नहीं जा सकता, लेकिन उसे भविष्य के लिए एक सकारात्मक पर्यावरणीय संसाधन में अवश्य बदला जा सकता है, जो कार्बन पृथक्करण में भी उपयोगी साबित होगा।

खदान क्षेत्र में बाँस (*डेंड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस*) का वृक्षारोपण

खदान क्षेत्र में सागौन (*टेक्टोना ग्रैंडिस*) का वृक्षारोपण

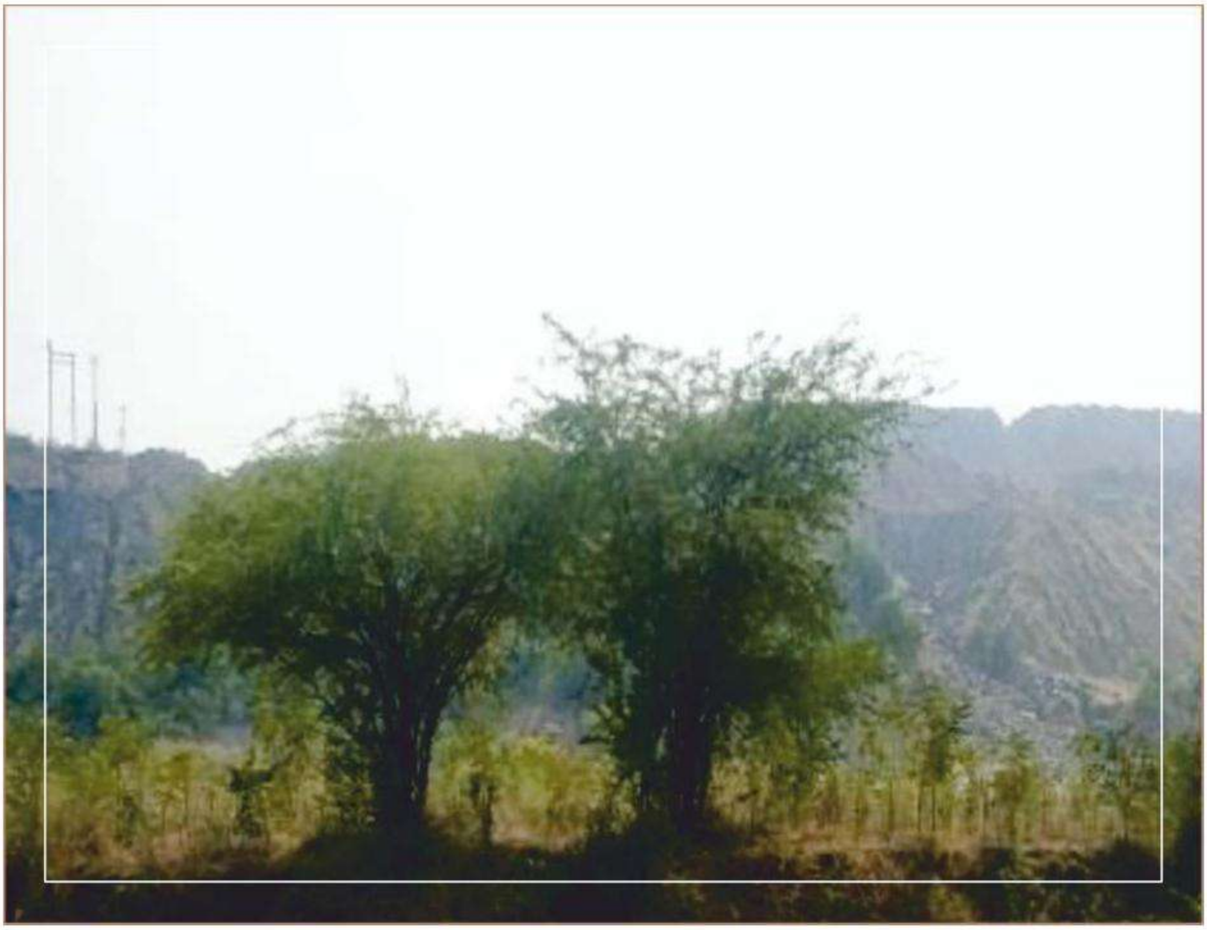

खदान सीमा क्षेत्र पर ग्रीनबेल्ट

उत्तराखण्ड के वनों की एक प्रमुख खरपतवार *एजरेटिना एडेनोफोरा* का जैविक नियंत्रण तंत्र

डॉ. विजय प्रकाश पाण्डेय, श्री दीपक कुमार महन्ता एवं डॉ. अरुण प्रताप सिंह
भा. वा. अ. शि. प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

एजरेटिना एडेनोफोरा का परिचय:

एजरेटिना एडेनोफोरा (कुल–एस्टेरेसी) दुनिया की सबसे खतरनाक खरपतवारों में से एक है। इसका मूल स्थान मेक्सिको है, लेकिन अब यह 30 से अधिक उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में फैल चुकी है। भारत में यह खरपतवार विभिन्न जलवायु क्षेत्रों–उष्णकटिबंधीय से लेकर समशीतोष्ण क्षेत्रों–तक व्यापक रूप से फैली हुई है। इसके कारण पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों को भारी नुकसान हो रहा है। उत्तराखण्ड सहित उत्तर से दक्षिण तक के पर्वतीय क्षेत्रों में इसका तेजी से फैलाव चिंता का विषय है। यह पौधा चंद्रबनी आशारोड़ी (430 मीटर) से लेकर हनुमानचट्टी, यमुनोत्री वन क्षेत्र (2680 मीटर) तक फैल चुका है। ये क्षेत्र पारिस्थितिक दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील हैं, इसलिए इसका विस्तार और भी गंभीर माना जाता है। यह खरपतवार स्थानीय वनस्पतियों को दबाकर जैव विविधता को कम करती है, वन्यजीवों की आवाजाही में बाधा उत्पन्न करती है, मिट्टी के पोषक तत्वों को घटाती है और सिंचाई नालों को अवरुद्ध कर देती है। लैंटाना, एजरेटिना और पार्थेनियम विश्व की दस सबसे हानिकारक आक्रामक खरपतवारों में गिनी जाती हैं, जो पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं और वन उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं।

जैविक नियंत्रण क्यों आवश्यक है?

एजरेटिना एडेनोफोरा जैसी आक्रामक खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए जैविक नियंत्रण आज विश्व–भर में अत्यंत आवश्यक हो गया है। यांत्रिक (हाथ से उखाड़ना या काटना) और रासायनिक दवाओं का प्रयोग उपाय महंगे साबित हुए हैं और लंबे समय तक प्रभावी भी नहीं रहते। बार–बार इनका प्रयोग करना पड़ता है, जिससे खर्च बढ़ता है और पर्यावरण पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

इसी कारण जैविक नियंत्रण को एक सुरक्षित और टिकाऊ विकल्प माना जाता है। इस दिशा में *प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस* नामक गॉल मक्खी (मूल स्थान–मेक्सिको) को 1963 में न्यूजीलैंड से भारत लाया गया था। इसे तमिलनाडु के नीलगिरि तथा पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग और कालिम्पोंग क्षेत्रों में एजरेटिना के नियंत्रण के लिए छोड़ा गया।

उत्तराखण्ड में भी "*एजरेटिना एडेनोफोरा* के जैविक नियंत्रण की खोज संबंधी अध्ययन" के अंतर्गत शोध कार्य किया गया। इस अध्ययन के परिणामों का उपयोग इस खरपतवार के प्रभावी प्रबंधन के लिए किया जा सकता है।

एजरेटिना पर जैविक नियंत्रण हेतु कीट समूहः *एजरेटिना एडेनोफोरा* पर किए गए सर्वेक्षण में इस खरपतवार से जुड़े कुल 19 प्रकार के कीट पाए गए। इनमें से 5 कीट ऐसे हैं जिनमें इस पौधे को अधिक नुकसान पहुँचाने की क्षमता पाई गई। ये हैं–

- *प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस* (तना गाँठ बनाने वाली मक्खी),
- **सायरा** प्रजाति,
- **ड्रोसोफिला** प्रजाति,
- *आर्किप्स माइकेसेना* (फूल, फल एवं शीर्ष भाग छेदक),
- *हाइपेना लेकेराटैलिस* (पत्तियाँ खाने वाला कीट)।

इनमें से सबसे अधिक प्रभावी और महत्वपूर्ण कीट *प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस* (स्टेम गॉल फ्लाई) पाया गया, जो उत्तराखण्ड में एजरेटिना के जैविक नियंत्रण में प्रमुख भूमिका निभाता है। हालाँकि, अध्ययन के दौरान यह भी पाया गया कि *पी. यूटीलिस* पर कुछ परजीवी कीट (पैरासिटॉइड) जैसे– *हैब्रोब्रेकॉन, डिनोट्रेमा, टोरीमस* ,

टोरीमोइड्स, यूरीटोमा, पेडिओबियस, ट्राइकोमालस परफेक्टस तथा कुछ अन्य अज्ञात प्रजातियाँ हमला करती हैं। ये परजीवी कीट स्टेम गॉल फ्लाई की संख्या कम कर देते हैं, जिससे खेत या वन क्षेत्र में जैविक नियंत्रण की प्रभावशीलता घट सकती है।

राज्य में किए गए सर्वेक्षण के दौरान एकत्र नमूनों से कुल 316 स्टेम गॉल फ्लाई (*पी. यूटीलिस*) (155 मादा, 161 नर), 43 अन्य द्विपंखी मक्खियाँ (जैसे *सायरा, ड्रोसोफिला, एथेरिगोना* और *प्लैटीपल्पस ओरिएंटलिस*), 2 प्रकार के पतंगे (***हाइपेना लैसरेटैलिस*** और ***आर्चिप्स माइकेसीआना***) तथा 74 परजीवी कीट (ब्राकोनिड, टोरीमिड, यूरिटोमिड, प्टेरोमालिड और यूलोफिड समूह) निकले।

यह अध्ययन दर्शाता है कि एजरेटिना पर विभिन्न कीटों का एक जटिल समूह कार्य कर रहा है, जिसमें स्टेम गॉल फ्लाई सबसे प्रभावी जैविक नियंत्रण कारक के रूप में सामने आया है।

एजरेटिना के जैविक नियंत्रण की असफलता के कारण:

एजरेटिना एडेनोफोरा के नियंत्रण में *प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस* (स्टेम गॉल फ्लाई) एक महत्वपूर्ण जैविक नियंत्रण कारक है। लेकिन इसकी प्रभावशीलता कई बार कम हो जाती है। इसका मुख्य कारण स्थानीय (स्वदेशी) परजीवी कीटों द्वारा इस पर हमला किया जाना है।

उत्तराखण्ड के कुछ क्षेत्रों में यह पाया गया कि सात प्रकार के स्वदेशी हाइमेनोप्टेरा वर्ग के परजीवी कीट, विशेषकर ब्राकोनिड समूह, गॉल फ्लाई पर भारी मात्रा में परजीवीकरण करते हैं। कुछ स्थानों पर लगभग 70% तक गॉल फ्लाई पर परजीवीकरण दर्ज किया गया।

स्वामीनाथन और रमन (1981) के अनुसार, *ब्रेकॉन* प्रजाति अकेले ही लगभग 80% परजीवीकरण के लिए जिम्मेदार थी।

इन परिस्थितियों के कारण गॉल फ्लाई की संख्या घट जाती है और वह एजरेटिना (क्रॉफ्टन वीड) को प्रभावी रूप से नियंत्रित नहीं कर पाती। यही कारण भारत में इस खरपतवार के जैविक नियंत्रण की आंशिक असफलता का प्रमुख कारण माना जाता है।

स्टेम गॉल फ्लाई (*प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस*) का जीवन चक्रः स्टेम गॉल फ्लाई, *एजरेटिना एडेनोफोरा* के तनों में गाँठ (गॉल) बनाकर विकसित होने वाला एक महत्वपूर्ण जैविक नियंत्रण कीट है। इसका जीवन चक्र निम्न प्रकार से पूरा होता है–

1. **अंडा अवस्थाः** मादा मक्खी पौधे के कोमल तनों में अंडे देती है। कुछ दिनों बाद अंडों से लार्वा (सूंडी) निकलते हैं।
2. **लार्वा अवस्थाः** लार्वा तने के अंदर प्रवेश कर वहाँ भोजन करते हैं। इनके खाने से तने में सूजन जैसी गाँठ (गॉल) बन जाती है। यही गॉल इनके विकास का मुख्य स्थान होता है।
3. **कोषावस्था (प्यूपा):** लार्वा गॉल के अंदर ही कोष (प्यूपा) में परिवर्तित हो जाते हैं। यह अवस्था कुछ दिनों तक रहती है।
4. **प्रौढ़ अवस्था (वयस्क मक्खी):** पूर्ण विकसित मक्खी गॉल में छेद बनाकर बाहर निकलती है। इसके बाद यह पुनः अंडे देकर जीवन चक्र को आगे बढ़ाती है।

अनुकूल परिस्थितियों में यह जीवन चक्र लगभग 3–4 सप्ताह में पूरा हो सकता है। गॉल बनने के कारण पौधे की वृद्धि रुक जाती है, शाखाएँ कमजोर हो जाती हैं और अंततः पौधा कमजोर पड़कर नियंत्रित हो जाता है।

एजरेटिना एडेनोफोरा पर आक्रमण करने वाले प्रमुख कीट:

एजरेटिना एडेनोफोरा (क्रॉफ्टन खरपतवार) पर कई प्रकार के कीट पाए जाते हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण कीट इस प्रकार हैं–

1. **स्टेम गॉल फ्लाई–*प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस*:** यह तने में गांठ (गॉल) बनाती है और पौधे की वृद्धि को रोकती है। यह जैविक नियंत्रण में सबसे महत्वपूर्ण कीट है।
2. **सायरा प्रजातिः** इसके लार्वा पौधे के विभिन्न भागों को क्षति पहुँचा सकते हैं।
3. **ड्रोसोफाइला प्रजातिः** यह भी एजरेटिना पर पाई जाती है और पौधे के ऊतकों पर प्रभाव डालती है।

4. **फूल एवं शीर्ष छेदक–*आर्किप्स माइकेसेना*** : यह फूल, फल और कोमल शीर्ष भाग को नुकसान पहुँचाता है।

5. **पत्ती भक्षक कीट–*हाइपेना लेकेराटैलिस*** : यह पत्तियों को खाकर पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्षमता कम कर देता है।

इन कीटों में से स्टेम गॉल फ्लाई (*प्रोसेसिडोकेरस यूटीलिस*) सबसे अधिक प्रभावी मानी जाती है, क्योंकि यह सीधे पौधे की संरचना और वृद्धि को प्रभावित करती है।

अंडा अवस्था

लार्वा अवस्था

कोषावस्था (प्यूपा)

नर–मक्खी

मादा–मक्खी

नर–मादा का जोड़ा

एजरेटिना एडेनोफोरा पर *पी. यूटीलिस* द्वारा गांठ (गाल) निर्माण

सायरा प्रजाति

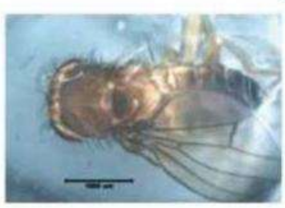
ड्रोसेफिला प्रजाति

आर्किप्स माइकेसेना प्रजाति

हाइपेना लेकेरेटैलिस

एजरेटिना एडेनोफोरा पर आक्रमण करने वाले प्रमुख कीट

टूना साइनेंसिस: महत्व, बीज भंडारण, नर्सरी तकनीक और कीट एवं रोग प्रबंधन

डॉ. मनीषा थपलियाल*, डॉ. नमिता एन.के. एवं सुश्री दीपिका
***भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला**
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

टूना साइनेंसिस

टूना मेलियासी कूल की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो सिल्वीकल्चरल और पारिस्थितिक महत्व के लिए जानी जाती है, जिनमें से कई को उनके औषधीय गुणों के लिए महत्व दिया जाता है। जीनस टूना व्यापक रूप से भारत, नेपाल, चीन, बर्मा, थाईलैंड, मलेशिया, जावा से लेकर यूरोप तक पूर्व में उच्च ऊंचाई पर वितरित है। उष्णकटिबंधीय एशिया और अफ्रीका में लगभग 15 प्रजातियाँ पाई जाती हैं और भारत में चार प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

टूना साइनेंसिस का पर्यायवाची *टूना सेराटा* प्रजाति जिसे आमतौर पर चीनी महोगनी के नाम से जाना जाता है, एक पर्णपाती या अर्ध पर्णपाती लकड़ी का पेड़ है, जो सीधे तने, कठोर लकड़ी और सुंदर बनावट के साथ 35 से 40 मीटर तक लंबा होता है। साइनेंसिस व्यापक रूप से दक्षिणपूर्वी एशिया में वितरित किया जाता है और दुनिया के कई हिस्सों में इसको उगाया जाता है। पूर्वी और दक्षिणपूर्वी एशिया के मूल प्रजातियाँ, उत्तर कोरिया से, अधिकांश पूर्वी, मध्य और दक्षिण–पश्चिमी चीन, नेपाल, उत्तरपूर्वी भारत, म्यांमार, थाईलैंड, मलेशिया, पश्चिमी इंडोनेशिया, पाकिस्तान और श्रीलंका , पश्चिमी हिमालय में, प्रजातियाँ जैसे *ल्योनिया ओवलिफोलिया, क्वेरकस ल्यूकोट्रिचोफोरा* (बाँज), *रोडोडेंड्रोन आर्बोरिटम* (बुरांस) आदि से जुड़ी हुई हैं।

उपयोग

टूना साइनेंसिस अपनी मूल श्रेणी में एक लोकप्रिय औषधीय पौधा है । जड़, छाल, तना, फल और पत्तियां मुख्य रूप से कई *फाइटोकेमिकल्स* जैसे *कूमारिन, फ्लेवोनोइड, फाइटोस्टेरॉल, फिनोल, टैनिन, एल्कलॉइड, ट्राइटरपेन, स्टेरॉयड* और *एंथ्राक्विनोन* की उपस्थिति के कारण अत्यधिक औषधीय हैं। छाल का उपयोग कसैले और विरेचक के रूप में किया जाता है, जड़ का चूर्ण स्फूर्तिदायक और मूत्रवर्धक के रूप में, और कोमल पत्तियों का कार्मिनेटिव के रूप में उपयोग किया जाता है। पौधे खनिज, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैटी एसिड, अमीनो एसिड, कैरोटीन, विटामिन, आहार फाइबर और अन्य यौगिकों के उत्कृष्ट स्रोत हैं। पत्तियों और युवा टहनियों में एक विशेष प्याज जैसा स्वाद होता है जो कैरोटीन, विटामिन बी और सी से भरपूर होते हैं। चीन और अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में पौष्टिक खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग किए जाते हैं । पौधे से विशेष इत्र तैयार किए जाते हैं ।

यह प्रजाति एक खाद्य पौधे के रूप में लोकप्रियता प्राप्त कर रही है; लकड़ी उद्योग में इसके सीधे तने और अच्छी गुणवत्ता की लाल लकड़ी, एंटी कैंसर, एंटी ट्यूमर, जीवाणुरोधी, एंटीऑक्सिडेंट, एंटीफंगल, हाइपोग्लाइसेमिक, एंटीडायबिटिक आदि जैसी चिकित्सीय गतिविधियों के कारण उच्च आर्थिक मूल्य है। सजावटी पेड़ का उपयोग इसके सीधे तने, सीधे रूप और उच्च शाखा बिंदु के कारण भूनिर्माण और सौंदर्यशास्त्र के लिए किया जाता है। एक महत्वपूर्ण पेड़ के रूप में, *टूना साइनेंसिस* को ऑस्ट्रेलिया, यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका सहित दुनिया के कई हिस्सों में इसकी प्राकृतिक सीमा के बाहर लगाया गया है। यह टूना जीनस के भीतर सबसे अधिक ठंड–सहिष्णु प्रजाति है और –20°C तक सर्दियों के तापमान में जीवित रह सकती है।

टूना प्रजाति की वृद्धि और सतत विकास पर्यावरणीय परिवर्तनों, खराब प्राकृतिक पुनर्जनन क्षमता, अत्यधिक कटाई, कीट क्षति (*हाइप्सिपाइला रोबस्टा*) के कारण सीमित है, जो इसकी सामान्य तीव्र वृद्धि को कम करता है और विकास क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

टूना साइनेंसिस का महत्व

भारत *टूना साइनेंसिस* का मूल क्षेत्र है। लेकिन प्रजातियों की खोज कम की जाती है। अनुसंधान मुख्य रूप से चिकित्सीय अनुप्रयोग और फाइटोकेमिकल जाँच पर केंद्रित है। हालाँकि, यह प्रजाति कई पारिस्थितिक लाभ प्रदान करती है। अच्छी तरह से विकसित जड़ें समस्याग्रस्त भूमि की सूखा प्रतिरोध को बढ़ा सकती हैं और सीसा जैसी भारी धातुओं को अवशोषित और जमा करने की क्षमता भी रखती हैं, जिससे वे प्रदूषित क्षेत्रों में फाइटोरेमेडिएशन के लिए एक संभावित समाधान बन जाती हैं। पत्तियों और युवा टहनियों का उच्च पोषण मूल्य ग्रामीण और वन क्षेत्रों में उपयोग किए जाने वाले अरुचिकर, कम पौष्टिक पशु चारे का विकल्प हो सकता है और इसे कृषि वानिकी प्रजाति के रूप में लगाया जा सकता है, क्योंकि इस प्रजाति द्वारा किसी भी नकारात्मक प्रभाव या एलीलोपैथिक या आक्रामक लक्षणों की सूचना नहीं है।

बीज संग्रहण और भंडारण तकनीक।

टूना साइनेंसिस में, एक शाखा के अंत में 30–50 से.मी लंबे पुष्पगुच्छों में फूल गर्मियों में (भारत में मई से जुलाई) शुरू होते हैं। पश्चिमी हिमालय में नवंबर से फल परिपक्व होने लगते हैं। फल एक कैप्सूल के आकार के होते है, भूरे रंग का, 2–3.5 से.मी लंबा, जिसमें कई पंखों वाले बीज होते हैं। *टूना साइनेंसिस* के ताजे बीज 75% से 90% अंकुरण दर प्रदर्शित करते हैं। उच्च नमी सामग्री (15% और अधिक) वाले बीज परिवेश के सामान्य तापमान पर एक महीने के भीतर व्यवहार्यता खो देंगे। हालाँकि उच्च प्रारंभिक व्यवहार्यता वाले बीजों को कम तापमान (5°C) वाले भंडारण कक्ष में एक वर्ष से अधिक समय तक संग्रहीत किया जा सकता है।

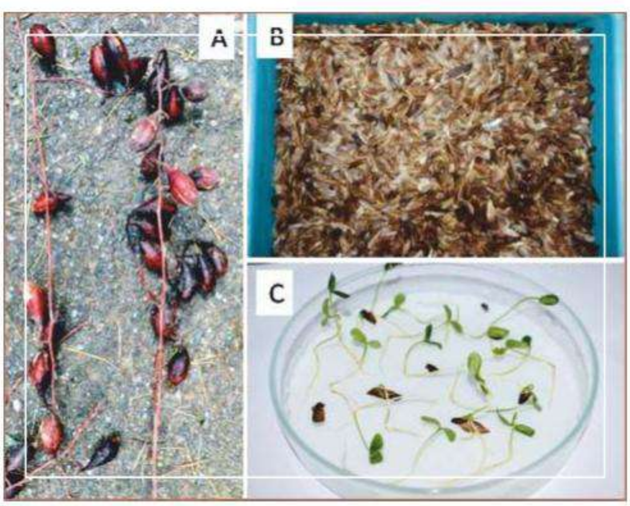

टूना साइनेंसिस A: फल, B: बीज, C: बीज अंकुरण

नर्सरी तकनीक

टूना साइनेंसिस बीज, कटिंग और टिशू कल्चर के माध्यम से प्रजनन करता है। इसका प्रसार बीज द्वारा सबसे अच्छा होता है। जो बड़ी संख्या में पौधे पैदा करते हैं। बीज एक सिरे पर पंखों वाले होते हैं और 8–16 मि.मी लंबे, 3.5–6.2 मि.मी चौड़े होते हैं जो हवा के माध्यम से फैलते हैं। बीज परिवेशी परिस्थितियों में लंबे समय तक टिके नहीं रह सकते हैं और शुष्कन के प्रति संवेदनशील होते हैं, मध्यवर्ती भंडारण व्यवहार और कम व्यवहार्यता प्रदर्शित करते हैं। इसलिए, पर्याप्त अंकुरण सुनिश्चित करने के लिए बीज जल्दी बोने की सलाह दी जाती है। सीधी बुआई की तुलना में बुआई से पहले बीजों को गुनगुने पानी (400°C) में भिगोने से अंकुरण बेहतर होता है। *टूना साइनेंसिस* के बीज मार्च के अंत और अप्रैल की शुरुआत के बीच बोए जाते हैं। शरद ऋतु में पौधे दोबारा लगाए जा सकते हैं।

बीज एवं पौधों में कीट एवं रोग प्रबंधन

रासायनिक नियंत्रण की आवश्यकता केवल तभी होती है जब बीज कीटों के हमले के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। मिथाइल ब्रोमाइड कार्बन डाई–सल्फाइड, इथेलिन डाई–क्लोराइड के साथ 24 घंटे के लिए 3 मिलीलीटर प्रति 100 किलोग्राम की दर से धूम्रीकरण की सलाह दी जाती है। भंडारण के दौरान फंगल हमले की रोकथाम के लिए, बीज को बैविस्टिन, थिरम @ 0.2% से उपचारित करने की सलाह दी जाती है।

अंकुरों में पत्ते गिराने वाले भृंगों को थिमेट (फोरेट 10 G) या क्लोर्पाइरिफोस (0.2%) @ 200 ग्राम / 10m^2 या पत्ते तोड़ने वाले भृंगों के विरुद्ध साप्ताहिक अंतराल पर दो बार कार्बरिल (0.2%) के साथ पत्ते पर छिड़काव द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

विविधा

4. समाजिक वानिकी के माध्यम से असम के ग्रामीण लोगों के आर्थिक उत्थान की संभावना

श्रीमती रीताश्री खनिकर
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

असम की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। असम की लगभग 70%-75% जनता कृषि पर निर्भर है और कुल कार्यबल का लगभग 50%-53% रोजगार देती है। हालाँकि कृषि मुख्य व्यवसाय है, लेकिन नियमित बाढ़, उचित सिंचाई और आधुनिक सुविधाओं की कमी जैसे कुछ कारकों के कारण कृषि की उत्पादकता और आर्थिक प्रदर्शन बहुत खराब है। इसलिए लोगों को अन्य विकल्पों को अपनाना होगा। इन सभी आय सृजन क्षेत्रों के अलावा, ग्रामीण लोगों, द्वारा सामाजिक वानिकी क्षेत्रों में व्यवसाय को अपनाना ग्रामीण लोगों के समाजिक आर्थिक उत्थान के लिए एक नई अवधारणा हो सकती है।

राष्ट्रीय वन आयोग ने 1976 में सामाजिक वानिकी शब्द का प्रयोग किया था। आयोग का मुख्य उद्देश्य मानवीय क्रियाओं के कारण वनों के क्षय से उत्पन्न स्थिति में सुधार हेतु शहरी बस्तियों के आसपास की भूमि का उपयोग करना था। "सामाजिक वानिकी" सामाजिक और ग्रामीण विकास के साथ–साथ पर्यावरण की स्थिति में सुधार के लिए वनों का प्रबंधन और संरक्षण, बंजर और क्षतिग्रस्त भूमि का वनीकरण है। यह किसानों को अपनी आय बढ़ाने के लिए अपने खेतों और खेतों के आसपास वन वृक्ष प्रजातियों को उगाने के लिए भी प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार यह गरीब ग्रामीण लोगों की आजीविका में उल्लेखनीय सुधार ला सकता है। ग्रामीण महिला श्रमिकों के लिए कई मायनों में रोजगार सृजन की अपार संभावनाएं हैं, जिनमें कृषि वानिकी, जलागम प्रबंधन, वृक्ष सुधार और वन संरक्षण शामिल हैं, विशेष रूप से वृक्ष नर्सरी में पौध तैयार करना, प्रत्यारोपण करना, छानना, थैलियां भरना, थैलों को क्रम में रखना जैसे कार्य शामिल हैं। बैगों की सफाई, खाद, गड्ढे खोदना आदि। इसके अतिरिक्त कमाई के लिए जंगल से जलाऊ लकड़ियों का संग्रह, पारंपरिक हाथ के पंखे, चटाई, लकड़ी के खिलौने तैयार करना, औषधीय और हर्बल पौधों की खेती, सब्जियों की खेती आदि सामाजिक वानिकी के कुछ अन्य क्षेत्र हैं जहाँ महिलाएँ, भाग ले सकती हैं।

असम में सामाजिक वानिकी

असम के वन विभाग की सामाजिक वानिकी शाखा ने भी समाज के वंचित वर्गों, विशेषकर महिलाओं के लिए रोजगार सृजन जैसे विभिन्न अल्पकालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए राज्य के ग्रामीण लोगों के सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए विभिन्न योजनाएं शुरू की हैं। इसमें जंगलों और आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और भूमिहीन ग्रामीण मजदूर और ग्रामीण लोगों की रोजगार क्षमता में सुधार के लिए क्षमता निर्माण और कौशल वृद्धि जैसे दीर्घकालिक उद्देश्य शामिल हैं।

असम वन विभाग की इस सामाजिक वानिकी शाखा ने पर्यावरण में सुधार और ग्रामीण जनता की सामाजिक –आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने की दिशा में भी उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। अप्रयुक्त सरकारी बंजर भूमि, ग्राम चरागाह संरक्षित क्षेत्र (वीजीआर) या व्यावसायिक चरागाह संरक्षित क्षेत्र (पीजीआर) भूमि की पहचान की गई है और इसे झोपड़ियों और कृषि उपकरणों के निर्माण के लिए ईंधनकाष्ठ, चारा, फल, छोटी लकड़ी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सामाजिक वानिकी वृक्षारोपण के तहत लाया गया है। ग्रामीण लोगों को राज्य की सामाजिक वानिकी शाखा ने भी ग्रामीण क्षेत्रों में 'एरी और मुगा' रेशम उद्योग जैसे पारंपरिक कुटीर उद्योग को समर्थन देने पर पूरा ध्यान दिया है। इस प्रकार सामाजिक वानिकी जिसका उद्देश्य पारिस्थितिक स्थिरता लाना है, ग्रामीण समुदाय की भलाई के लिए आर्थिक विकास की दिशा में भी काम करता है।

संसदीय राजभाषा समिति निरीक्षण: तैयारी और सावधानियाँ

श्री शंकर शर्मा
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संसदीय राजभाषा समिति भारत सरकार के अधीन कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए निरीक्षण करती है। यह एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति है और अपनी रिपोर्ट सीधे महामहिम राष्ट्रपति को प्रस्तुत करती है। समिति का गठन राजभाषा अधिनियम, 1963 के अधीन वर्ष 1976 में किया गया था। इसमें 30 संसद सदस्य हैं, 20 लोकसभा से और 10 राज्यसभा से। माननीय गृह मंत्री जी इस समिति के अध्यक्ष होते हैं।

समिति की तीन उप–समितियाँ समय–समय पर विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, उपक्रमों, स्वायत्त निकायों और बैंकों का निरीक्षण करती हैं। इन निरीक्षणों का उद्देश्य यह देखना होता है कि राजभाषा अधिनियम, 1963 और राजभाषा नियम, 1976 का पालन किस स्तर तक हो रहा है।

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और मंत्रालय के अधीन समस्त कार्यालयों का निरीक्षण उक्त समिति की तीसरी उप–समिति करती है। यही कारण है कि भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद एवं अधीनस्थ समस्त संस्थानों/केन्द्रों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह निरीक्षण की तैयारी गंभीरता और सावधानी से करें।

निरीक्षण की तैयारी के दौरान ध्यान देने योग्य बातें

1. निरीक्षण के समय अधिकांश जानकारी अभिलेखों से ही सत्यापित होती है। इसलिए सभी रजिस्टर, रिपोर्टें और प्रतिवेदन अद्यतन अवस्था में उपलब्ध होने चाहिए।
2. हिंदी पत्राचार एवं टिप्पणी के आंकड़ों में विसंगति न रहे, इसके लिए निरीक्षण से पहले सभी आंकड़ों का मिलान कर लेना आवश्यक है।
3. राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का नियमित आयोजन और कार्यवृत्त पर कार्रवाई विशेष महत्व रखता है।
4. कर्मचारियों की हिंदी, टंकण और आशुलिपि प्रशिक्षण संबंधी जानकारी अद्यतन रूप में तैयार रखनी चाहिए।
5. वेबसाइट, नामपट्ट, संकेतक, मुहरें और पत्रशीर्ष आदि राजभाषा प्रावधानों के अनुरूप होने चाहिए।
6. हिंदी प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु संचालित योजनाओं और उपलब्धियों का विवरण भी तैयार रखना चाहिए।

माननीय संसदीय समिति को प्रस्तुत की जाने वाली "निरीक्षण प्रश्नावली" बड़ी व्यापक, बहुआयामी और अन्योन्याश्रित होती है तथा उसके एक प्रश्न का संबंध प्रश्नावली के दूसरे प्रश्न के साथ जुड़ा होता है। अतः भरते समय सावधानी अत्यंत आवश्यक है :

- केवल सत्यापित और अभिलेखों द्वारा समर्थित जानकारी ही दें।
- सभी जानकारी हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में दें।
- आंकड़ों में एकरूपता बनाए रखें।
- अधूरे उत्तर न छोड़ें, लागू न होने पर "लागू नहीं" लिखें।
- उपलब्धियों को प्रमाण सहित संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करें।
- प्रश्नावली में सदैव नवीनतम स्थिति दर्शाएँ।
- अनुलग्नक दस्तावेजों की सूची तैयार रखें।
- भाषा और वर्तनी की शुद्धता पर ध्यान दें।

निरीक्षण के दौरान समिति की मर्यादा अनुसार आवश्यक व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान दी जानी चाहिए। समिति का निरीक्षण केवल औपचारिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह कार्यालय में राजभाषा नीति के वास्तविक क्रियान्वयन का मूल्यांकन भी है। यदि कार्यालय वर्षभर राजभाषा संबंधी कार्यों को व्यवस्थित ढंग से संचालित करता रहे और अभिलेख अद्यतन रखे, तो निरीक्षण सहज और सफल हो जाता है।

खाने योग्य बांस (*डेन्ड्रोकैलमस एस्पर*)

श्री मनोज पूसाम, डॉ. फातिमा शिरीन एवं डॉ. नासिर मोहम्मद
भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

बांस, घास कुल (पोएसी) की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो आदिकाल से भारतीय ग्रामीणों एवं गरीब परिवारों की मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं एवं अन्य जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ आय का प्रमुख स्रोत रही है। इतना ही नहीं विभिन्न कुटीर उद्योगों जैसे चटाई, टोकरी, खिलौने, सजावट के अन्य सामान, घरेलू उपयोग की अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त, बांस कागज एवं लुगदी जैसे बड़े उद्योगों का भी मूल आधार है। भारत में बांस की 24 जातियाँ और 134 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। बांस की विभिन्न जाति–प्रजातियों की दृष्टि से भारत विश्व का प्रतिनिधि देश है। *डेन्ड्रोकैलेमस जिजैनटियस, डी. स्ट्रिक्टस, डी.एस्पर, डाइनोक्लोआ, मैसील्लेनैन्डी, पी. आरिआ, बम्बूसा बल्गेरिस* आदि व्यापारिक महत्व की महत्वपूर्ण प्रजातियाँ हैं, जिनका सरकारी व निजी तौर पर उत्तरोत्तर संवर्धन किया जा रहा है।

डी.एस्पर के प्ररोह

डेन्ड्रोकैलेमस एस्पर बांस की विदेशी प्रजाति है, जिसके कोमल कंद व तने बड़े स्वाद से खाए जाते हैं, तथा परिपक्व बांस कागज एवं लुग्दी उद्योग में काम आता है। इसका आर्थिक मूल्यांकन इसके खाने योग्य कोमल कंदों एवं तनों के आधार पर किया जाता है। यह दक्षिण–पूर्व एशिया की मूल–प्रजाति है, तथा थाइलैण्ड, चीन, वियतनाम, मलेशिया, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स आदि देशों में पाया जाता है। डिब्बा बंद भोजन के रूप में पूरे विश्व में निर्यात होने के कारण थाईलैण्ड और चीन के वन विभाग और गैर सरकारी संगठनों द्वारा इसके रोप–वनों को निरन्तर बढ़ाया जा रहा है। भारतीय जलवायु में इसके प्रचुर उत्पादन व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में दिनों–दिन बढ़ती मांग को देख कर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम एवं भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून द्वारा सन् 1992 से लगातार इसके रोपण को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

आकारिकी: *डेन्ड्रोकैलेमस एस्पर* प्रायः 20 से 30 मीटर तक उंचाई वाला बांस है, जिसकी दो गांठों के बीच की लम्बाई 20 से 45 से.मी. तथा व्यास 8 से 15 से.मी. तक होता है। एक भिर्रे में 20 से 60 तक बांस पाए जाते हैं।

पुष्पन: इस प्रजाति में फूल 100 से 126 वर्षों के अन्तराल में सिर्फ एक बार आते हैं।

बीज: पूरे जीवन काल में एक बार पुष्पन होने से बीज बहुत कठिनाई से मिलते हैं, साथ ही अधिकांश बीजों में अंकुरण क्षमता ही नहीं होती है। अंकुरित होने वाले बीजों की अंकुरण क्षमता भी कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाती है। अतः रोपण हेतु बीज से पौधे तैयार करना बहुत मुश्किल कार्य है।

वर्धी प्रजनन: अन्य बांस प्रजातियों की भांति *डी. एस्पर* में भी बहुत शाखा कटिंग द्वारा वर्धी प्रजनन बहुत कठिनाई से होता है, इसलिए रोपण हेतु प्रति वर्ष वृहद पैमाने पर पौधे

तैयार करना जटिल समस्या है। अतः बीज की अनुपलब्धता व वर्धी प्रजनन में कठिनाई के रहते उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर के वैज्ञानिकों द्वारा ऊतक संवर्धन विधि से इस प्रजाति के पौधे तैयार करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की गई है।

पौधे रोपण हेतु आवश्यक जानकारीः *डी. एस्पर* के सफल रोपण के लिए निम्नलिखित जानकारी आवश्यक है।

जलवायुः यह अधिक आद्रता वाले क्षेत्रों में समुद्रतल से 1000 मीटर तक की उंचाई पर अच्छी तरह वृद्धि करता है।

मृदाः इसके रोपण के लिए बलुई–दोमट मिट्टी वाले क्षेत्र, जहां जल निकासी अच्छी तरह से होती हो, अधिक उपयुक्त है।

रोपण स्थलः *डी. एस्पर* के पौधे लगाने के लिए रोपण–स्थल को माह अप्रेल–मई में जोत कर खरपतवार नष्ट कर देना चाहिए तथा 5×5 मीटर की दूरी पर 70×70×60 से.मी. के गढ्ढे खोद कर तैयार कर लेना चाहिए। प्रति गढ्ढा 30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी–गली खाद, 50 ग्रा. अमोनियम सल्फेट 100 ग्राम सिंगल सुपर फासफेट तथा 40 ग्राम म्यूरेट पोटाश डाल देना चाहिए। जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के द्वितीय सप्ताह तक प्रति गढ्ढा एक मीटर उंचे व 4 से 7 कलम वाले पौधे लगा कर पौधों को चारों ओर से गढ्ढे से निकली मिट्टी से अच्छी तरह दबा देना चाहिए ।

सिंचाई एवं निराई गुड़ाईः पौधे रोपण के पश्चात् यदि वर्षा नहीं होती है, तो सप्ताह में एक बार तथा कम वर्षा होने पर 10 से 12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे पौधा अपनी जड़ें जमा कर उचित वृद्धि कर सके।

उर्वरकः रोपण के 3 माह पश्चात् प्रति पौधा पुनः 50 ग्राम अमोनियम सल्फेट डाल देना चाहिए।

पौध–सुरक्षाः इस पौधे को जानवर भी बड़े चाव से खाते हैं, अतः इसकी सुरक्षा हेतु पौधे के चारों ओर मजबूत बाड़ लगाना आवश्यक है। यह बाड़ स्थानीय संसाधनों जैसे बांस, कांटेदार झाड़ियां अथवा ईंट, गारा, पत्थर आदि की दीवार बना कर कम खर्च में लगाई जा सकती है।

पैदावारः उचित देखभाल करने पर तीन वर्ष पश्चात् प्रति हेक्टेयर लगभग 1.50 टन कन्द तथा नये कलम प्राप्त होते हैं।

उपयोगः *डी. एस्पर* के निम्नलिखित उपयोग हैं–

1. इसका उपयोग भोजन के रूप में किया जाता है, क्योंकि इसके कन्द व कोमल तनों में 10 से 14 प्रतिशत प्रोटीन, 2 से 4 मिलीग्राम (प्रति 100 ग्राम) विटामिन 'सी' एवं अन्य पोषक लवण होते हैं। अतः यह एक पौष्टिक आहार माना जाता है।
2. किसान के लिए यह आय का शुद्ध एवं सुलभ साधन है। कन्द एवं कोमल तनों से तैयार डिब्बा बंद भोजन के निर्यात से विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है।
3. परिपक्व, बांस का उपयोग कागज की लुगदी बनाने में किया जाता है, क्योंकि इसकी लुगदी में लम्बे रेशे होने के कारण उत्तम किस्म का कागज बनता है।
4. मजबूत एवं अधिक लम्बा होने के कारण इसका उपयोग फर्नीचर, कच्चे मकान, वाद्ययन्त्र, हस्त शिल्पियों द्वारा घरेलू उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुएं तथा सजावटी वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है।

दिहिंग पटकाई: उत्तर–पूर्व भारत के वर्षावन का पारिस्थितिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अध्ययन

सुश्री पूजा दास गुप्ता एवं डॉ. ध्रुब ज्योति दास
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान,जोरहाट

परिचय

दिहिंग पटकाई भू–दृश्य उत्तर पूर्व भारत में उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों का एक महत्वपूर्ण गढ़ है। इस प्राकृतिक छटा में दिहिंग पटकाई हाथी रिजर्व के निकटवर्ती कुछ बस्तियां और दिहिंग पटकाई राष्ट्रीय उद्यान का एक हिस्सा भी शामिल है। संपूर्ण हाथी रिजर्व का कुल क्षेत्रफल 937 वर्ग किलोमीटर है (रंगराजन एवं अन्य, 2010)। दिहिंग पटकाई राष्ट्रीय उद्यान, दिहिंग पटकाई हाथी रिजर्व का एक महत्वपूर्ण अंश है। इस राष्ट्रीय उद्यान को जयपुर, सोराइपुंग और मार्घेरिटा पश्चिम रेंज में विभाजित किया गया है, जो 231–65 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला है (असम सरकार, 2020)।

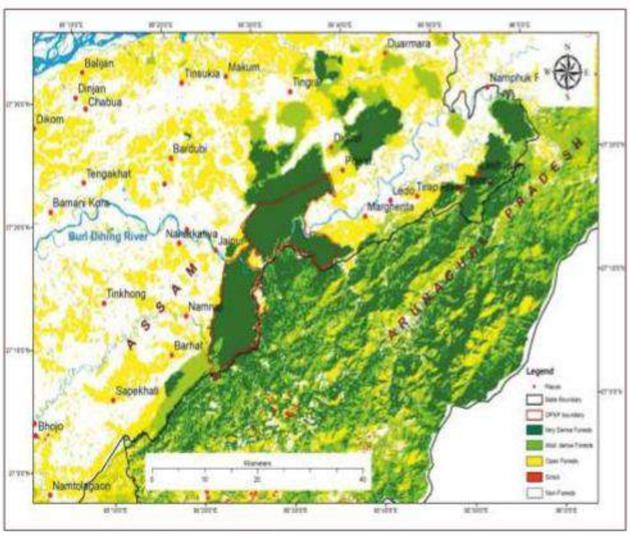

दिहिंग पटकाई राष्ट्रीय उद्यान का भौगोलिक मानचित्र

दिहिंग पटकाई का पारिस्थितिक महत्व इसकी समृद्ध जैव विविधता में निहित है, विशेष रूप से इंडो–बर्मा जैव विविधता हॉटस्पॉट (मायर्स एवं अन्य, 2000) के भाग के रूप में और हाथी संरक्षण प्रयासों में योगदान के रूप में। दिहिंग पटकाई क्षेत्र का आर्थिक इतिहास अहोम राज्य की स्थापना, ब्रिटिश औपनिवेशिक चाय की खेती, कोयला खनन, तेल निष्कर्षण और स्टिलवेल रोड के निर्माण से जुड़ा हुआ है। हालाँकि, कोयला खनन पर चल रही चर्चाएँ इस बात पर ज़ोर देती हैं कि व्यावसायिक हितों और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन हासिल करना कितना मुश्किल है।

पारिस्थितिक और सांस्कृतिक पहलू:

गहन समीक्षा से कुल 210 वृक्ष प्रजातियों, 60 झाड़ियों, 62 जड़ी–बूटियों, 51 लताओं और 5 बांस प्रजातियों की उपस्थिति का पता चला, जो दिहिंग पटकाई की उल्लेखनीय पेड़ पौधे की विविधता को उजागर करता है (असम सरकार, 2016, दास एवं अन्य, 2025)।113 प्रलेखित प्रजातियों के साथ, ऑर्किड की प्रचुरता इस क्षेत्र के आकर्षण में योगदान करती है (गोगोई एवं अन्य, 2012; बरुआ एवं अन्य, 2021)। इसके अलावा, मशरूम की 175 प्रजातियों का दस्तावेजीकरण किया गया है (गोगोई एवं अन्य, 2024)। इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में वन्य जीव पाए जाते हैं जिनमें 50 स्तनपायी प्रजातियां, 151 पक्षी प्रजातियां, 6 सरीसृप प्रजातियां, 28 उभयचर प्रजातियां और 21 मछली प्रजातियां हैं (नंदिनी एवं अन्य, 2009; काकोति एवं अन्य, 2009; सेनगुप्ता एवं अन्य, 2010; काकोति, 2012; असम सरकार, 2016, भूयाँ एवं अन्य, 2024)। आर्थ्रोपोड्स, विशेष रूप से परागणक प्रजातियों पर किए गए अध्ययनों से राष्ट्रीय उद्यान में 116 प्रजातियों का पता चला है, जो पर्यावरण के भीतर मौजूद जटिल अंतः क्रियाओं को उजागर करते हैं (कर्मकार एवं अन्य, 2024)।

अपनी प्राकृतिक संपदा के अलावा, दिहिंग पटकाई क्षेत्र विविध जातीय–भाषाई समुदायों का एक संगम है, जहाँ असमिया, चाय बागानों की जनजातियाँ, नेपाली और अन्य जनजातीय समूह एक साथ रहते हैं। इस क्षेत्र में वन भूमि की प्रचुरता के कारण, अधिकांश असमिया लोग आज़ादी से पहले यहाँ आकर बस गए थे। इसके अलावा, असम सरकार की 2016 की एक रिपोर्ट के अनुसार, डिब्रूगढ़ जिले की बाढ़ से विस्थापित कुछ लोग जंगल के किनारे बस गए। सिंगफो, खामती, ताई फाके, ताई फाकियाल, ताई खम्यांग, ताई ऐतन और सोनोवाल कछारी इस क्षेत्र के कुछ प्रमुख जनजातीय समूह हैं (बोरा, 2020)। ताई फाके अपने भोजन के लिए पेड़ों पर निर्भर हैं क्योंकि वे खाना पकाने, छप्पर के घर बनाने के लिए लकड़ी इकट्ठा करते हैं (लहकर और चखप, 2019)। ताई फाके आबादी ने, विशेष रूप से, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण की तेजी से बढ़ती लहरों के बीच अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने में अविश्वसनीय अटलता दिखाई है (काकोति, 2013; बर्मन, 2020)।

बेलनाकार वांडा ऑर्किड और होलॉन्ग वृक्ष

दिहिंग पटकाई में बुनियादी ढांचे और विकास के तीव्र विस्तार के चलते पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ रहा है, जिससे वन्यजीवों का आवास कम हो रहा है और मानव–हाथी संघर्ष की घटनाएँ बढ़ रही हैं। दिहिंग पटकाई 295 प्रलेखित हाथियों का एक महत्वपूर्ण संरक्षण केंद्र है। बावजूद इसके, अतिक्रमणों से होने वाली मानवीय क्षति को कम करने के लिए इसमें तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के अवशेष, स्टिलवेल रोड, डिगबोई की तेल रिफाइनरी और लीडो की कोयला खदानों जैसे आबादी वाले क्षेत्र का हाथी अभयारण्य से निकटता इस समस्या को और बढ़ा देती है। अवैध वृक्ष कटाई भी एक बड़ी चिंता का विषय है, जो सख्त संरक्षण कानूनों की आवश्यकता को दर्शाता है।

निष्कर्ष:

दिहिंग पटकाई का पर्यावरण उल्लेखनीय पारिस्थितिक विशेषताओं, सांस्कृतिक संरक्षण, आर्थिक महत्व और विकट बाधाओं के बीच एक नाजुक संबंध को दर्शाता है। पारिस्थितिक रूप से संतुलित वर्तमान और भविष्य सुनिश्चित करने के लिए, हमें हितधारकों, शोधकर्ताओं और सरकार के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता है। दिहिंग पटकाई की कहानी, पर्यावरण, संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता, लोगों की आजीविका और बढ़ती पर्यावरणीय चिंताओं के बीच संतुलन बनाने का एक प्रकृष्ट उदाहरण है।

इलिशियम ग्रिफिथी: पूर्वोत्तर भारत की एक लुप्तप्राय प्रजाति

डॉ. मिताली मेहता
भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

भूमिका

इलिशियम ग्रिफ़िथी, एक दुर्लभ और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधा प्रजाति है जो शिसेंड्रेसी कुल से संबंधित है। यह भारत के पूर्वी हिमालयी क्षेत्र, भूटान, नेपाल और म्यांमार के कुछ हिस्सों में पाया जाता है। यह अधिक सामान्य रूप से ज्ञात *इलिशियम वेरम* (चीनी स्टार ऐनीज़) जैसा दिखता है, लेकिन इसका वितरण और रासायनिक संरचना अलग है। इस प्रजाति को आईयूसीएन द्वारा लुप्तप्राय प्रजातियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। अरुणाचल में इस प्रजाति को लगभग संकटग्रस्त बताया गया है, जबकि मेघालय में इसे गंभीर रूप से संकटग्रस्त के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह एक बड़ी झाड़ी या पेड़ की प्रजाति है जिसकी ऊँचाई 3–4.5 मीटर होती है। इस प्रजाति को इसके फाइटोकेमिकल और औषधीय गुणों के लिए महत्व दिया जाता है। *इलिशियम ग्रिफिथी* के गुण और वितरण कई पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होते हैं, जिनमें भौगोलिक स्थान, जलवायु और मिट्टी की स्थिति शामिल हैं। इसके सूखे फल का उपयोग पारंपरिक रूप से स्थानीय दवा, इत्र और पाक में किया जाता है।

अपनी समृद्ध फाइटोकेमिकल विविधता के लिए मूल्यवान *इलिशियम ग्रिफिथी* को पारंपरिक रूप से उत्तेजक और वातहर के रूप में उपयोग किया जाता है, और कभी–कभी स्थानीय बाजारों में *इलिशियम वेरम* (असली स्टार ऐनीज़) के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके फलों, पत्तियों, छाल और लकड़ी में कई तरह के बायोएक्टिव यौगिक होते हैं, जिनमें सगंध तेल, प्रीनिलेटेड एलिल डेरिवेटिव, सेस्क्यूटरपेनोइड्स और लिग्नान शामिल हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक अध्ययनों में महत्वपूर्ण रोगाणुरोधी, एंटीऑक्सिडेंट और कैंसर विरोधी गतिविधियों का प्रदर्शन किया है। उल्लेखनीय रूप से, अनुसंधान में पाया गया है कि इसके कुछ अलग–अलग यौगिक में फेफड़े और अग्नाशय के कैंसर कोशिकाओं को नियंत्रित करने की क्षमता है।

परिणामस्वरूप, बढ़ती मांग के कारण औषधीय पौधे पर भारी दबाव है। *इलिशियम ग्रिफिथी* की आबादी में गिरावट, मुख्य रूप से इसके सुगंधित और औषधीय रूप से महत्वपूर्ण फलों और सगंध तेल के लिए जंगल से असंवहनीय और अत्यधिक कटाई के कारण है। खेती, वनों की कटाई, बुनियादी ढांचे के विकास और वन विखंडन के कारण आवास विनाश इसकी प्राकृतिक आबादी को और अधिक खतरे में डालता है। इसके अतिरिक्त, संगठित खेती के तरीकों की कमी, जंगल में खराब पुनर्जनन और इसके संरक्षण महत्व के बारे में सीमित जागरूकता इसकी घटती जनसंख्या के कारक है, जिससे यह अपने मूल क्षेत्र में लुप्तप्राय होने के जोखिम में है। इसलिए, इसके संरक्षण और संवर्धन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा प्रासंगिक अनुसंधान और विकास गतिविधियों द्वारा इसका समुचित समर्थन किया जाना चाहिए। इसके अलावा इस प्रजाति में कृषि भूमि पर व्यावसायिक खेती की भी काफी संभावनाएं हैं, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होगी और उनकी आजीविका में सुधार होगा।

इलिशियम ग्रिफ़िथी, के बीज

इलिशियम ग्रिफिथी के बीज

बाजार परिदृश्य

इलिशियम ग्रिफिथी तथा स्टार ऐनीज़ प्रजातियों की वैश्विक मांग निम्नलिखित कारणों से बढ़ रही है:

- फार्मास्यूटिकल्स में उपयोग (शिकिमिक एसिड के स्रोत के रूप में, एंटी–इन्फ्लूएंजा दवाओं के लिए)।
- प्राकृतिक स्वाद एजेंटों के लिए बढ़ती प्राथमिकता।
- अरोमाथेरेपी और परफ्यूमरी उद्योग में बढ़ती मांग।

पूर्वोत्तर भारत में, बाजार काफी हद तक असंगठित है, और प्रजाति मुख्य रूप से जंगल से एकत्रित की जाती है। इसका व्यापार स्थानीय मंडियों, छोटी प्रसंस्करण इकाइयों में किया जाता है, और कभी–कभी बिचौलियों के माध्यम से निर्यात किया जाता है। हालाँकि, अभी तक बड़े पैमाने पर खेती नहीं हुई है, जिससे संगठित बाजार के विकास की काफी गुंजाइश है।

आवास आवश्यकता:

- **ऊँचाई**: *इलिशियम ग्रिफ़िथी* मुख्य रूप से 1,700–3,000 मीटर की ऊँचाई पर वन क्षेत्रों में पाई जाती है।
- **कृषि–जलवायु आवश्यकता**: 2,000–3,000 मिमी की वार्षिक वर्षा के साथ ठंडी, आर्द्र जलवायु में उगता है।
- **मिट्टी**: अच्छी जल निकासी वाली, उपजाऊ दोमट मिट्टी जो कार्बनिक पदार्थों से भरपूर हो।
- **प्रसार**: बीज और कटिंग द्वारा। बीजों को ताजा बोया जाना चाहिए क्योंकि व्यवहार्यता तेजी से कम हो जाती है।
- **अंतर**: पौधों के बीच 3–4 मीटर।
- **अंतरफसल**: चाय बागानों, कृषि वानिकी प्रणालियों, या छाया–सहिष्णु फसल संयोजनों में एकीकृत किया जा सकता है।

उपयुक्त क्षेत्रों (जैसे अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड) में किसानों के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता अभियान इसकी खेती को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

बीज संग्रह और देखभाल की पद्धतियाँ:

- बीज आमतौर पर सितंबर से नवंबर के दौरान एकत्र किए जाते है।
- शाखाओं और भविष्य की उपज को नुकसान पहुँचाने से बचने के लिए सावधानीपूर्वक बीज एकत्र करना आवश्यक है।
- नमी को कम करने और फफूंद के विकास को रोकने के लिए संग्रह के तुरंत बाद फलों को धूप या छाया में सुखाया जाता है।
- उचित ग्रेडिंग और छंटाई से बाजार मूल्य में वृद्धि होती है।
- सूखे बीज को नमी–रोधी कंटेनरों में पैक किया जाता है और तेल की मात्रा और सुगंध को संरक्षित करने के लिए ठंडी, सूखी जगहों पर संग्रहीत किया जाता है।

गांवों में सामुदायिक सुखाने और भंडारण के बुनियादी ढांचे से फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान में काफी कमी आएगी।

चुनौतियाँ

इलिशियम ग्रिफ़िथी के सतत विकास में कई बाधाएँ हैं:

- जंगल में अत्यधिक कटाई और आवास का क्षरण।
- वाणिज्यिक खेती के मॉडल और क्षेत्र–विशिष्ट कृषि संबंधी पद्धतियों का अभाव।
- स्थानीय समुदायों में इसके बाज़ार मूल्य और प्रसंस्करण तकनीकों के बारे में कम जागरूकता।
- किसानों और अंतिम उपभोक्ताओं के बीच सीधा संपर्क न होना और मूल्य अस्थिरता।
- प्रजाति–विशिष्ट कृषि–तकनीकों और कटाई के बाद के प्रबंधन पर, सीमित शोध और दस्तावेज़ीकरण।

समाधान और सुझाव

- समुदाय–आधारित सतत् दोहन दिशानिर्देशों को बढ़ावा देना।
- उपयुक्त कृषि–जलवायु क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर खेती के लिए मॉडल प्रदर्शन भूखंड स्थापित करना।
- समुदाय स्तर पर सुखाने, तेल निष्कर्षण, ग्रेडिंग और पैकेजिंग इकाइयों सहित मूल्य श्रृंखला विकसित करना।
- प्रसार, बीज संग्रह और प्रसंस्करण पर किसान प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करना।
- किसान सहकारी समितियों और मंडियों के माध्यम से बाजार संबंधों को मजबूत करना।
- आनुवंशिक सुधार और उत्पाद विकास के लिए विभिन्न संस्थानों, विश्वविद्यालयों और वन विभागों के बीच अनुसंधान सहयोग को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष

इलिशियम ग्रिफिथी, पूर्वोत्तर भारत का एक लुप्तप्राय औषधीय पौधा है, जिसका पारिस्थितिकी और आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। आवास के नुकसान, अत्यधिक कटाई और गैर–संवहनीय वन प्रथाओं के कारण इसकी आबादी तेजी से घट रही है। इसके अस्तित्व के लिए तत्काल संरक्षण उपाय, आवास संरक्षण और समुदाय–आधारित पहल महत्वपूर्ण हैं। सतत प्रबंधन और खेती को बढ़ावा देने से इसकी जंगली आबादी पर दबाव कम किया जा सकता है । इसलिए, जैव विविधता को संरक्षित करने और पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की सुरक्षा के लिए *इलिशियम ग्रिफिथी* का संरक्षण महत्वपूर्ण है।

सबको हिंदी सीखनी चाहिए। इसके द्वारा भाव विनिमय में सारे भारत को सुविधा होगी।
-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

जामुन खुखरी (*फ्लेबोपस पोर्टेंटोसस*)

श्री रविशंकर प्रसाद
भा.वा.अ.शि.प.-वन उत्पादकता संस्थान, रांची

बरसात का मौसम आते ही चारों ओर हरीयाली छा जाती है, क्योंकि पेड़ों के सारे पत्ते वर्षा के कारण धुल जाते हैं और धरा में भी हरियाली छा जाने से प्राकृतिक सौंदर्य और भी अधिक मनमोहक लगने लगती है। हवा में उड़ने वाले सभी धूल–कण नीचे बैठ जाते हैं और वायु एकदम स्वच्छ हो जाती हैं।

इन्हीं दिनों में, अन्य प्रदशों के जंगलों या उन स्थानों में जहाँ जामुन के वृक्ष पाए जाते हैं, वहाँ एक विशेष प्रकार का मशरूम उगता है, जिसे जामुन खुखरी के नाम से जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम *फ्लेबोपस पोर्टेंटोसस* है। ग्रामीण लोग इसे "वेज मटन" भी कहते हैं क्योंकि यह खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता हैं।

यह मशरूम आकार में बहुत बड़ा होता है। इसके एक मशरूम का वजन कभी–कभी 100 से 200 ग्राम तक हो सकता है। यह बाजार में रू 200 से 400 प्रति किलोग्राम तक बिकता है। इसकी ऊपरी सतह गहरे भूरे रंग की होती है और निचली सतह हल्के पीले रंग की, जो स्पर्श करने पर मखमली लगती है।

यह मशरूम अधिकतर जामुन के पेड़ों के साथ लगे होने के कारण पौष्टिक होता है, क्योंकि इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। इस कारण यह अपने पौष्टिक और औषधीय गुणों के कारण ग्रामीण आहार का एक हिस्सा सदियों से बना हुआ है।

यह मशरूम अधिकतर जामुन के पेड़ों के नीचे ही पाया जाता है, इस कारण इसे जामुन खुखरी कहा जाता है। इसका वृक्ष के साथ एक्टोमायकोराइजल संबंध होता है। इसके अलावा इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण भी पाए जाते हैं।

इससे अनेक प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं, जिसमें से 60–70 प्रतिशत प्रोटिन पाचन योग्य होता है, जो इसे अन्य वनस्पति–आधारित प्रोटीन की तुलना में अधिक सुपाच्य बनाता है।

इसे पकाने से पहले अच्छी तरह धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है। फिर इसे प्याज एवं अन्य मसालों के साथ भूनकर स्वादिष्ट सब्जियाँ तैयार की जाती हैं।

चूँकि यह मशरूम केवल बरसात के मौसम में ही उपलब्ध होता है, इसलिए इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। इसमें अनुसंधान की आवश्यकता है, ताकि किसान अन्य मौसमों में भी इसका उत्पादन कर सकें और अतिरिक्ति आय प्राप्त कर सकें। इसके अलावा, इसका मूल्यवर्धन कर इसे भंडारित किया जा सकता है, जिससे यह हर मौसम में उपलब्ध हो सके।

हिमाचल प्रदेश के कुछ महम्वपूर्ण *ज़िन्जिबेरेसी* पौधों का पारंपरिक ज्ञान

सुश्री मीनाक्षी, श्री ब्रिजभुषण एवं श्री वनीत जिष्टू
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

ज़िन्जिबेरेसी कुल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो भोजन, मसालों, और दवाओं के लिए कई उपयोगी उत्पाद प्रदान करता है। 53 वंश और 1200 से अधिक प्रजातियों के साथ *ज़िन्जिबेरेसी*, ज़िंगिबरेलेस क्रम में सबसे बड़ा परिवार है। इस अध्ययन में जिला सिरमौर में इस परिवार की कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों के पारंपरिक उपयोग के बारे में बताया गया है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ जंगली अवस्था में पाई जाती हैं तथा अन्य की खेती विभिन्न उपयोगों के लिए की जाती है। इस प्रकार से यह प्रजातियाँ स्थानीय लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत है, जोकि इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में मदद करती है।

1. *कर्कुमा ज़ेडोएरिया* (क्राइस्ट.) रोस्को

इसे सफेद हल्दी के नाम से जाना जाता है, यह *ज़िजिबेरेसी* कुल से संबंधित एक बारहमासी जड़ी बूटी है। यह पौधा मूल रूप से बांग्लादेश, श्रीलंका और भारत में पाया जाता है। इसे आमतौर पर सिरमौर में कचूर के नाम से जाना जाता है और इसका उपयोग इसके औषधीय गुणों के लिए किया जाता है। पौधे में एक सीधा तना, प्रकंद (राइज़ोम) और जडें होती हैं। इसकी पत्तियाँ बडे आकार की होती हैं तथा इसमें मध्यशिरा के चारों ओर बैंगनी रंग के क्षेत्र पाए जाते हैं। पुष्पक्रम गोलाकार होता है, प्रकंद से लगभग 30 सेमी लंबा निकलता है। फूल सफेद या हल्के पीले रंग के तथा ब्रेक्ट लाल हरे रंग के होते हैं। इसके फल का आकार कैप्सूल है।

शिमला बाज़ार में कचूर की चलती फिरती दुकान

पारंपरिक एवं औषधीय उपयोग:

कचूर के राइज़ोम को कच्चा उपयोग किया जाता है, ताजा होने पर इसे हाथ से पतले टुकडों में काटा जाता है। इन टुकड़ों को बाद में पूरे वर्ष उपयोग के लिए धूप में सुखाया जाता है। लोग धागे का उपयोग करके इन कटे हुए टुकड़ों से माला बनाते हैं। कड़वापन *कर्कुमा ज़ेडोएरिया* राइजोम की विशेषताओं में से एक है, इसलिए बुखार, सर्दी और खांसी के इलाज के लिए इन टुकडों को शहद या गुड़ के साथ खाया जाता है। सर्दियों के दौरान, राइजोम को

घी में उबाला जाता है और फिर इस मिश्रण को सोने से पहले छाती, हाथों और पैरों पर लगाया जाता है। कचूर का उपयोग सर्दी, खांसी, बुखार और पेट दर्द के इलाज के लिए काढा बनाने में किया जाता है। इस पौधे की खेती सिरमौर के विभिन्न क्षेत्रों (लाना चेता, राजगढ़, बोगधार, नोहराधार, संगड़ाह, शिलाई) में की जाती है।

2. *कर्कुमा लोंग एल.*

इसे आमतौर पर हल्दी के नाम से जाना जाता है, यह एक बारहमासी जड़ी–बूटी है। यह भारत, थाईलैंड, द्वीपसमूह और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत में इसकी खेती लगभग सभी राज्यों विशेषकर तलिमलनाडु, महाराष्ट्र और बंगाल में की जाती है। पौधे की ऊंचाई 35–60 इंच होती है। इसकी पत्तियाँ ओब्लोंग एवं नुकीली होती हैं और फूल पीले रंग एवं कीप के आकार के होते हैं, जो बड़े ब्रेक्ट से बाहर निकलते हैं।

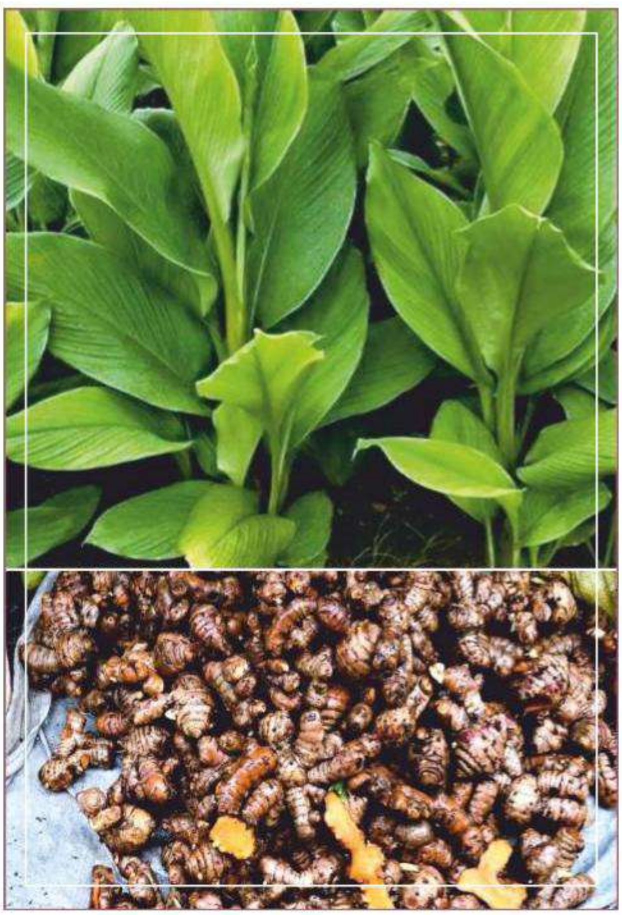

हल्दी का पौधा तथा बाजार में बिक्री के लिए कच्ची हल्दी

पारंपरिक एवं औषधीय उपयोग:

इस पौधे का प्रकन्द (राइज़ोम) सबसे उपयोगी भाग है। इसका उपयोग कच्चा या पका कर किया जाता है। ताजा प्रकंद को टुकड़ों में काटा जाता है और फिर सुखाया जाता है एवं तत्पश्चात प्रकंद को कुचलकर पाउडर बनाया जाता है। हल्दी का उपयोग मसाले के रूप में और कुछ बीमारियों को ठीक करने के लिए किया जाता है। इसके प्रकंद का पेस्ट कटने या घाव पर लगाने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है। घाव होने पर, कटने पर और मासिक धर्म में होने वाले दर्द के इलाज के लिए हल्दी वाला दूध पीने को दिया जाता है। खून की अधिक कमी वाले मरीजों को भी हल्दी दी जाती है। इसे त्वचा की समस्याओं जैसे की पिंपल्स आदि के उपचार के लिए त्वचा पर लगाया जाता है। इस पौधे की खेती सिरमौर के विभिन्न क्षेत्रों में की जाती है।

3. *हेडीचियम स्पाइकेटम एस.एम.* इसे आमतौर पर स्पाइक्ड जिंजर लिली के रूप में जाना जाता है, यह एक छोटी कठोर प्रकन्द बारहमासी जड़ी बूटी है जो हरे पत्तों और बड़े नारंगी–सफेद फूलों के साथ लगभग 1–2 मीटर तक बढ़ती है। इसके फूल सुगंधित एवं नारंगी–लाल आधार के साथ सफेद होते हैं। इसके तने के शीर्ष पर 15–25 सेमी घने स्पाइक दिखाई देते हैं। फूल की नली 5–6.5 सेमी लंबी होती है, जो सेपल कप से काफी लंबी होती है, जिसमें सफेद संकीर्ण पंखुड़ियाँ बाहर की ओर फैली होती हैं। पत्तियाँ ओब्लोंग, एक फुट तक लंबी और 4–12 सेमी चौड़ी होती हैं। यह हिमाचल प्रदेश से अरुणाचल प्रदेश तक 1800–2800 मीटर की ऊंचाई पर वितरित है।

हेडीचियम स्पाईकेटम (पौधा)

पारंपरिक एवं औषधीय उपयोगः जंगली हल्दी के तने और पत्तियों को *कैनबिस सैटिवा* के रेशों के साथ मिलाकर 'मंदरी' नामक चटाई तैयार की जाती है। मधुमेह के इलाज और दर्द से राहत के लिए प्रकंद को धूप में सुखाया जाता है और खाया जाता है; दर्द से राहत पाने के लिए राइजोम का पेस्ट भी लगाया जाता है। यह पौधा जंगल से एकत्र किया जाता है। इसके प्रकंद का उपयोग अनेक प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है, जिसके कारण ये स्थानीय लोगों की आय को भी बढ़ाता है।

4. *ज़िन्जिबेर ऑफिसिनेल* रोस्कः अदरक के पौधे में बारहमासी कंदीय या प्रकंद जड़ें होती हैं। पौधा गहरे हरे रंग की पत्तियों के साथ 60 से 90 सेमी लंबा एक सीधा, डंठल (तना) उत्पन्न करता है। इसके डंठल चपटे आवरण से ढके होते हैं; तने पर 8–12 डिस्टिच पत्तियां मौजूद होती हैं। इस पौधे की खेती पूरे भारत, बांग्लादेश, ताइवान, जमैका और नाइजीरिया में व्यापक रूप से की जाती है।

पारंपरिक एवं औषधीय उपयोगः राइज़ोम का उपयोग सर्दियों के दौरान चाय बनाने के लिए किया जाता है और सर्दी और खांसी के इलाज के लिए स्थानीय औषधि के रूप में 'काढ़ा' बनाने में भी किया जाता है। इसका उपयोग सुगंधित पाकशाला मसाले के रूप में भी किया जाता है। चूंकि अदरक अपने सूजनरोधी गुणों के लिए जाना जाता है, स्थानीय लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए इसके प्रकंद को कुचलकर पाउडर बनाया जाता है और शहद के साथ इसका सेवन किया जाता है। ताजा प्रकंद का उपयोग खाना पकाने, सलाद के रूप में और अचार बनाने में भी किया जाता है। इस पौधे की खेती सिरमोर जिला के अधिकांश क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में की जाती है।

अदरक का पौधा

बाज़ार में बिकता अदरक

लालित्य

5. एआई वरदान या अभिशाप, फैसला आपका

श्री अभिषेक खन्ना
भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय, देहरादून

क्या है असली क्या है दिखावा,
दुनिया में आया है नया छलावा।
अभिशाप कहें या कहें वरदान,
एआई ने कर दी हैं चीजें आसान।।
आज अंतरजाल पर एआई छाया है,
यह मायाजाल इंसान ने बनाया है।
इसकी चपेट में सारा संसार है,
हम सबके लिए यह उपहार है।।

तकनीक भी देखो यह कैसी महान,
तस्वीरों में डाल दी है इसने अब जान।
अभिशाप कहें या कहें वरदान,
एआई ने कर दी हैं चीजें आसान।।
कोई सवाल पूछो या ढूंढो जवाब,
एआई तो है एक खुली किताब।
चैट जीपीटी, मेटा या आस्क एआई,
इन्हीं के आगे होती है अब सारी पढ़ाई।।

इंसानों की गलती भी सुधारता है,
उन्हें अपना दोस्त मानता है।
मुश्किलों को भी सुलझाता है,
फ़िर सही निष्कर्ष पर पहुँचाता है।।
यह ना तो घमंडी है ना ही कुछ मांगे,
अपना ज्ञान सभी से यह सांझे।
इंसानों की कार्य सीमाओं को यह,
बिना किसी व्यवधान के लांघे ।।

आप सोच रहे होंगे यह विडंबना कैसी,
उपहार है अगर तो यह सज़ा है कैसी ?
अगर कर दी है इसने सभी चीजें आसान,
अभिशाप नहीं, यह तो है एक वरदान!
यह "उम्दा तकनीक है' विशेषज्ञों का दावा,
फ़िर भी मैं कहता हूँ कि है यह छलावा।

वरदान है लेकिन बन सकता है अभिशाप,
आप पूछेंगे मुझसे कि कैसे जनाब ?

कुछ लोग करते हैं इसका गलत इस्तमाल,
सर्वे के नाम पर पूछते हैं सवाल।
आपकी निजी ज़िंदगी में हस्तक्षेप करेंगे,
इसका नुकसान बस आप ही भरेंगे।।
कोई संदिग्ध टेलीफ़ोन आये तो मत उठाना,
साइबरसेल चाहता है आपको बताना।
फ़ोन पर होगा बेटा, बाप या मित्र पुराना,
मगर यह एक छलावा है भूल न जाना।।

वो आवाज़ आपके रिश्तेदार की होगी,
या वो आवाज़ एआई की होगी।
कैसे करेंगे अंतर दोनो में,
जब जज़्बातों से भरी मन में तकरार होगी।।
सोशल मीडिया पर नया ट्रेंड छाया है,
साड़ी पहने महिलाओं का नया रूप बनाया है।
निजी ज़िंदगी को अंतरजाल पर दर्शाया है,
यह मायाजाल ने आपका फ़ायदा उठाया है।।
ये तो बस कुछ उदाहरण है,
एआई के लिए यह सब साधारण है।
डीपफेक, गलत सूचनाएँ, सुरक्षा अधिक्रमण,
इस तरह कर देगा यह संसार का पतन।।
याद रखना मेरे इस कथन को,
बना देगा यह असहाय हम सबके जीवन को।
अभिशाप भी है यह, वरदान भी,
महान भी है यह, नुकसान भी।।

एआई आता है हम सबके काम,
कहीं बना ना दे यह हम सबको गुलाम।
इसका सदुपयोग करोगे तो आगे बढ़ोगे,
दुरूपयोग किया तो अपराधी बनोगे।।
अंत में बस इतना कहता हूं,
फ़ैसला यह मैं आप पर छोड़ता हूं।
अभिशाप कहें इसको या कहें वरदान,
एआई का आविष्कार है तो महान।।

'हे गंगा'

श्री सौरभ दुबे
भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

हे गंगा तुम बहती जाती, निर्मल जल की धारा,
काँच सा उज्जवल चमके, पावन जल तुम्हारा।
देवलोक से आयी तुम, करने मानव कल्याण,
कलरव करती धरती पर, मधुर स्वरों का गान।।

ऊँचे पर्वत उपवन जंगल, सब तेरे हम साये,
शिखरों से अल्हड़ बहती, कलकल ध्वनि सुनाये।
तेरे आँचल की ओट में, भारत ने जीवन पाया,
विकसित होकर पला – बढ़ा, ले तेरी ममता की छाया।।

करा नहीं है अंतर तुमने, राजा रंक फकीरा,
माँ तो बस ये ही सोचे, हर बालक मेरा हीरा।
पर स्वार्थ हमारा, उस माँ के उपकार के आगे भारी,
नष्ट हो रही धरा, अब सोचे गंगा मेरी भी बारी।।

आयी थी जो दासिया, करने गंगा की चाकरी,
शीतल निर्मल जल इनका, संस्कृति का साक्षी।
जीवन दायक अमृत रुपी, इनका मीठा पानी,
नहीं अलग है इनकी भी, गंगा सी अमर कहानी।।

नदी नहीं ये माता है, करना इनका सम्मान,
ये ही दायक जीवन की, न करो इनका अपमान।
गई गंगा गर स्वर्ग को वापस, तो पीढ़ियों तक पछताओगे,
क्या है इतना सामर्थ की, तुम नयी गंगा ले आओगे ।।

किसान का संघर्षपूर्ण जीवन

श्री उमाशंकर
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

भरे बसंती मौसम में, पतझड सा जीवन जीता है।
दूध दही की नदियां बहती, फिर भी आंसू पीता है ।।

तपन जेठ की उसने समझा, शीतलहर का फव्वारा।
माघ पूस की हिम लहरी में, खोज रहा है नभ में तारा ।।

पालनहार जगत का वह, तोड़ हड्डियाँ खटता है ।
जा करके तब महलों में, छप्पन व्यंजन पकता है ।।

सुत जेष्ठ धरा का है किसान, अवनि पर यह तो है विष्णु ।
हल रूपी सुदर्शन हाथ में इसके, फिर भी यह है कितना सहिष्णु ।।

पांच सितारा होटल में, जो भी व्यंजन पकता है ।
वह किसान की है मेहनत, जो खड़ी धूप में खटता है ।।

मटमैला सा है शरीर, कपड़े भी उसके सने हुए ।
खड़ी दोपहरी में देखो, वह सीना ताने खड़े हुए ।।

धरती पर वह है अभिमान,
ऐसे धरती वीरों को, उमा करता बारम्बार प्रणाम ।।

वृक्ष की चित्कार

श्री नवनीत गुप्ता
भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय,देहरादून

वृक्ष हूँ
तनहा खड़ा हूँ
तूफानों को झेल कर भी आपके लिए अड़ा हूँ।
साथी मेरे सभी कट गए मुझको अकेला छोड़ा है
कृतघ्नता के इस उपकार को मैंने ही तो झेला है।।

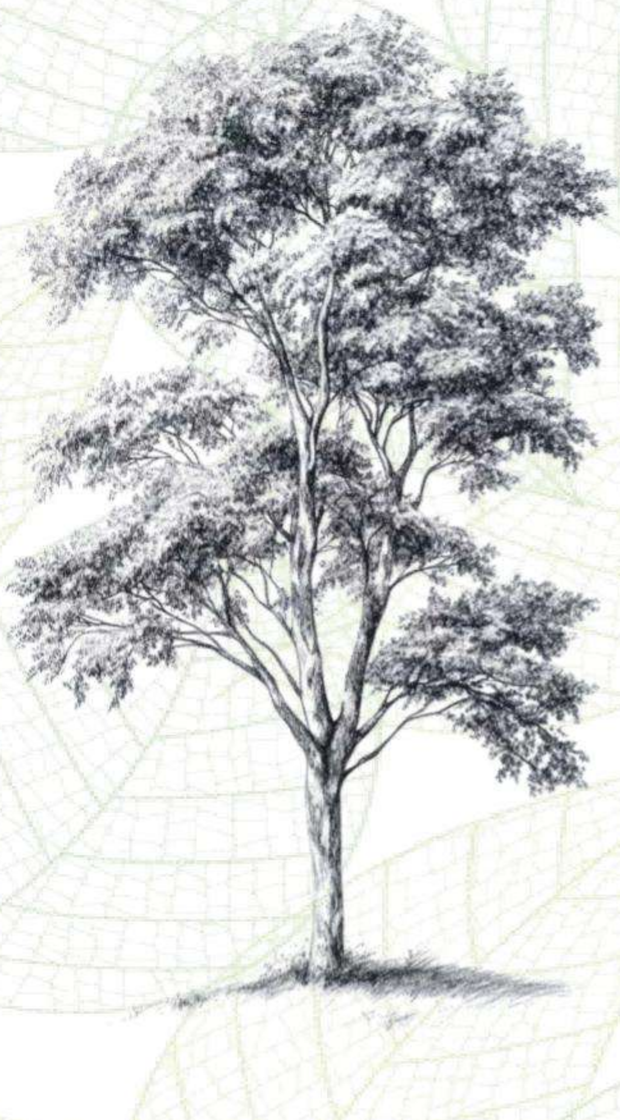

मैं वृक्ष हूँ
तनहा खड़ा हूँ
तूफानों को झेल कर भी आपके लिए अड़ा हूँ।
जीवन मैंने दिया आपको पानी का अंबार दिया
हवा को मैंने घर–घर पहुँचाया भोजन का भंडार दिया,
खुशियों को सब तक पहुँचाया औषधियों का भंडार दिया
लगी धूप जब आपके सर पर छाया का इंतजाम किया।
प्रदूषण से इस धरा को मैंने ही तो मुक्त कराया था
आई विपत्ति जब मनुष्य पर तो मैंने ही प्राण बचाए थे।
फिर सभी आप जरा भर सोचो आपने दया परिणाम दिया,
क्या जुर्म था मेरा क्यों मेरा बलिदान किया?
मुझ पर आरी चलाते हुए तनिक दर्द नहीं आया था,
जब मैं गिरा इस जमीन पर तुम्हारा दिल नहीं घबराया था।
मुझको ही पूजा जाता आराधना मेरी करते हो
आया वक़्त जब अपने स्वार्थ का तो मुझ पर ही प्रहार करते हो।
जिंदगी के हर मोड़ पर मैंने आपका साथ दिया,
जब भी आई तुझ पर मुसीबत अपना जीवन त्याग दिया।
हो जाएगा विनाश तुम्हारा खाने–खाने को भटकोगे,
पानी भी नहीं मिलेगा तुमको जीवन को भी तरसोगे।
नवनीत, चाहते हो जिंदा मुझको तो इतना उपकार करा देना,
एक वृक्ष के मरने पर
सौ वृक्ष लगवा देना... सौ वृक्ष लगवा देना।।

घर

श्रीमती सीमा ठाकुर
भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय,देहरादून

तिनका तिनका जोड़कर, ईंट सीमेंट सरियें को तोड़कर
हो घर अपना,जिसमें गूंजे बच्चों की किलकारियां,
हर कोने में हो जीवन,प्यार और विश्वास,
लेकिन स्वप्न और हकीकत में होता है फर्क,
जहां मियां–बीवी की सोच में हो दिन रात का अन्तर,
एक सोचे पूरब और दूसरा पश्चिम, देते वो जवाब हमेशा
प्यार तो तुमसे बहुत हुआ, पर इतना भी खास नहीं हुआ,
ताजमहल तो मुझे भी बनाना था, लेकिन लोन पास नहीं हुआ
हम भी थे तो जिद्दी, बोले क्यों मेरे मरने का इंतजार करते हो, जो ताजमहल की बात करते हो
अपने ही हठ के कारण, अपने दफतर में दे दी अर्जी, शायद भगवान की भी थी यही मर्जी।
हो गया लोन पास और हम लगे घर बनाने
आटे चावल का भाव था पता हमें, लगने लगा पता अब
भाव ईट,सीमेंट सरियें और नखरे ठकेदारों का।
हमने वर्तमान तो क्या भविष्यनिधि भी समाप्त कर डाली
और चिंता में बालों में सफेदी उगा ली।
बना घर तो सोचा क्या नाम दूं इसका
सोचा लिखवा दूं 'अतिथि देवो भवः' लेकिन लिखवा दिया 'आप कैमरे की नजर में है'।
दास्तान थी यही हमारी घर बनाने की,
परन्तु जाने लगे दोस्त हमारे, लगता है डर हमें
घर रहेंगें वही, हम रह न पायेंगें, मृत्यु खड़ी होगी सम्मुख राहें रोके,
अनर्गल जिन्दगी ढोते ढोते, किसी दिन, चलती भीड़ में, चार कंधों के बीच में
चले जायेंगें घर अपने, चले जायेंगें घर अपने।।

प्रगति का प्रकृति पथ

श्रीमती सुधा पाण्डेय - धर्मपत्नी डॉ. विजय प्रकाश पाण्डेय
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान,देहरादून

चकाचौंध की अंधी दौड़ में, अपनी जड़ों को न भूला देना।
खुशियों का जो महल बने, उसे मिट्टी से सजा देना।।
जो ऊंचे गगन इमारत बने, उस पर हरियाली की छाया हो।
जितनी बढ़ी मशीनें यहाँ, उतना ही वन लहराया हो।।
जब वृक्षों की शीतल छाया में, हम योजनाएँ बुनते हैं।
तब कुदरत की हर धड़कन में, हम समाधान को सुनते हैं।।
सूरज की तेज किरणे हों, और शांत निर्मल जल होगा।
तभी सुनहरी भोर बनेगी, और उज्जवल हमारा कल होगा।।
पहाड़ सिखातें हैं हमें, हर मुश्किल में अडिग रहना।
और सिखाता है झरना, रूकना न कभी बहते रहना।।
प्रकृति के साथ जो चलता है, वही शिखर तक पहुँचता है।
सच्ची तरक्की वही है, जहाँ मन खुश हो जाता है।।
आओ हम सब मिलकर अब, एक नया संकल्प उठाएं।
प्रकृति को भी साथ रखें, और देश को भी आगे बढ़ाएं।।

शिकारी देवी व कमरु नाग की पवित्र यात्रा का वृतांत

श्री दिनेश कुमार धीमान
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

हिमाचल प्रदेश, जिसे 'देव भूमि अतार्थ देवताओं की भूमि' भी कहा जाता है, भारत के उत्तरी भाग में स्थित एक राज्य है। यह अपने ऊंचे पहाड़ों, हरी–भरी घाटियों, नदियों और झीलों के लिए प्रसिद्ध है। हिमाचल प्रदेश में प्राकृतिक सुंदरता तो है ही इसके साथ ही प्रदेश के लगभग प्रत्येक हिस्से में भिन्न–भिन्न देवी–देवताओं के मंदिर या मूलस्थान भी स्थित है। प्रदेशवासियों की इन धार्मिक स्थलों में विशेष आस्था है तथा भिन्न–भिन्न अवसरों पर इन मंदिरों या देव स्थलों पर जा कर पूजा–अर्चना की जाती है। प्रायः यह धार्मिक स्थल या मंदिर ऊंची चोटियों पर ही स्थित है, इसलिए यहाँ पर पहुँचने के लिए कड़ी मशक्कत करनी पड़ती है और एक लंबा सफर तय करने के बाद ही इन स्थानों पर पहुंचा जा सकता है और इस प्रकार की यात्रा कष्टदायी तो होती है परंतु गंतव्य पर पहुँचने के पश्चात एक अलग ही एहसास एवं खुशी मिलती है। कई धार्मिक स्थल तो इतने दुर्गम क्षेत्रों में स्थित है, जहां पहुँच कर ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे स्थानों पर बिना ईश्वर की इच्छा व आशीर्वाद के पहुँचना असंभव सा प्रतीत होता है। ऐसे दुर्गम स्थलों की यात्रा के पश्चात अक्सर यात्री कहते सुने जाते हैं कि यह यात्रा तो प्रभु इच्छा व आशीर्वाद से पूर्ण हुई है वरना उनके लिए तो असंभव ही प्रतीत होता था। इन धार्मिक स्थलों में लोगों की आस्था को देखते हुए हिमाचल सरकार प्राकृतिक पर्यटन के साथ–साथ अब धार्मिक पर्यटन को भी बढ़ावा दे रही है।

हाल ही में मुझे मेरे तीन करीबी मित्रों (मैं/लेखक – दिनेश धीमान, भीषम, मनोज व गांधी जी) को हिमाचल प्रदेश के मंडी जिला में स्थित पौराणिक महत्व के दो प्रसिद्ध देव–स्थलों – शिकारी देवी व कमरु नाग के पवित्र यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस यात्रा को पर्यटन के साथ–साथ अब धार्मिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण यात्रा माना जाता है। इस लेख के माध्यम से इस यात्रा का संक्षिप्त विवरण इस आशय के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ कि इससे पाठकों तथा इन स्थानों की यात्रा की चाह रखने वालों के लिए ज्ञानवर्धक होगी।

शिकारी माता मंदिर का इतिहास:

अगर मैं शिकारी देवी मंदिर के इतिहास की बात करूँ तो किवदंतियों के अनुसार मंदिर की स्थापना के बारे में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि जब पांडवों और कौरवों के बीच में जुए का खेल चल रहा था तब एक औरत ने उनको मना किया तथा बताया कि जुआ खेलने से होने वाली हानि को टाला नहीं जा सकता और जुआ खेलने के फलस्वरूप पांडवों को अपना महल और राजपाट छोड़कर निर्वासित होना पड़ा। जब पांडव अपना वनवास काट रहे तो वो इस क्षेत्र में आये और कुछ समय यहां पर रहें। एक दिन अर्जुन एवं अन्य भाईयों ने एक सुंदर मृग देखा तो उन्होंने उसका शिकार करना चाहा पर वो मृग काफी पीछा करने के बाद भी उनके हाथ नहीं आया। सारे पांडव उस मृग की चर्चा करने लगे कि वह मृग कहीं मायावी तो नहीं था कि तभी आकाशवाणी हुई कि मैं इस पर्वत पर वास करने वाली शक्ति हूं और मैंने पहले भी तुम्हें जुआ खेलते समय सावधान किया था पर तुम नहीं माने और इसीलिये आज वनवास भोग रहे हो। इस पर पांडवों ने उनसे क्षमा प्रार्थना की तो देवी ने उन्हें बताया कि मैं इसी पर्वत पर नवदुर्गा के रूप में विराजमान हूं और यदि तुम मेरी प्रतिमा को निकालकर उसकी स्थापना करोगे तो तुम अपना राज्य पुनः पा लोगे। पांडवों ने ऐसा ही किया और उन्हें नवदुर्गा की प्रतिमा मिली जिसे पांडवों ने पूरे विधि–विधान से स्थापित किया। चूंकि माता मायावी मृग के शिकार के रूप में मिली थी इसलिये माता का नाम शिकारी देवी कहा गया।

दिनांक 14 जून 2025 को हमने प्रातः 09.00 बजे अपने निजी वाहन से धामी, जिला शिमला से शिकारी देवी की यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा के लिए जून से सितम्बर माह

अति–उत्तम माने जाते है। सुन्नी, ततापानी होते हुए लगभग 01.00 बजे करसोग पहुंचे।

थोड़ी देर करसोग बाज़ार में घूमने के पश्चात हमने करसोग के चर्चित ढाबा में दिन का भोजन किया, जो बहुत ही स्वादिष्ट एवं स्थानीय जायके से भरपूर था। इसके बाद करसोग से लगभग 3 किलोमीटर पीछे सनारली नामक स्थान से शिकारी देवी की यात्रा प्रारम्भ की। कुछ वर्षों पहले तक यह यात्रा पैदल मार्ग से ही संभव थी परंतु अब मंदिर तक सड़क मार्ग से की जा सकती है। यह मंदिर 3359 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। शिकारी चोटी के रास्ते में घने जंगल अद्भुत हैं। मंडी जिले की सबसे ऊंची चोटी होने के कारण इसे मंडी का मुकुट भी कहा जाता है। विशाल हरे चरागाह, मनोरम सूर्योदय और सूर्यास्त, बर्फ से ढंके पर्वतों की श्रृंखलाओं का मनोरम दृश्यों से भरपूर यह स्थान प्रकृति प्रेमियों के लिए पसंदीदा स्थल है। सर्दियों के दौरान इस स्थान पर बहुत अधिक बर्फबारी होती है। इस स्थान पर करसोग से पहुंचा जा सकता है जो शिकारी देवी से सिर्फ 21 किलोमीटर दूर एक चोटी पर स्थित है। शिकारी चोटी पर शिकारी देवी का एक छत रहित मंदिर है। इस मंदिर को पांडवों द्वारा स्थापित (शतपीठ) कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ऋषि मार्कंडेय ने भी कई वर्षों तक इस स्थान पर तपस्या की थी। स्थानीय लोगों के अनुसार इस क्षेत्र में सर्दियों में 8–10 फुट बर्फ गिरती है परंतु शिकारी माता की मूर्ति पर कभी बर्फ नहीं टिकती, इसे एक दैवीय चमत्कार ही माना जाता है।

यह पूरा क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में स्थित शिकारी देवी वन्यजीव अभयारण्य एक संरक्षित क्षेत्र है, जो विविध वनस्पतियों और जीवों के लिए जाना जाता है। वर्ष 1962 में स्थापित इस अभयारण्य का नाम शिकारी देवी के नाम पर रखा गया है और उन्हें समर्पित मंदिर एक लोकप्रिय तीर्थ स्थल है। यह वन्यजीव प्रेमियों के लिए एक स्वर्ग है, जहाँ गोरल, काला भालू, कस्तूरी मृग और मोनाल जैसे जानवर पाए जाते हैं। इस अभयारण्य में कई प्रकार के वन, जिनमें मुख्य रूप से अल्पाइन चरागाह, उप–अल्पाइन वन, पश्चिमी हिमालयी ओक, बान ओक, खरसू ओक, रई–तोष, पश्चिमी मिश्रित शंकुधारी वन, मेपल तथा बुरांश जैसे चौड़े पत्ते वाले पेड़, झाड़ियाँ तथा औषधीय पौधे पाए जाते हैं। अभयारण्य की जैव विविधता को और अधिक संरक्षित करने तथा वाणिज्यिक खनन जैसी अवैध गतिविधियों को नियंत्रित करने या रोकने के लिए अभयारण्य के चारों ओर एक पारिस्थितिकी–संवेदनशील क्षेत्र घोषित किया गया है।

सनारली से लगभग 15 किलोमीटर पक्का सड़क मार्ग है तथा आगे लगभग 6 किलोमीटर कच्चा मार्ग है तथा इसमें गाड़ी चलाने के कुशल/दक्ष चालक का होना चाहिए विशेषकर पर्यटन सीज़न में यहाँ ट्रैफ़िक जाम का भी सामना करना पड़ता है तथा गाड़ियों को पास देना एक बहुत ही कठिन एवं जोखिमपूर्ण कार्य है। सड़क खतरनाक होने के बावजूद, यह अनुभव रोमांचकारी है, विशेष रूप से प्राकृतिक सघन जंगलों और अल्पाइन घास के मैदानों की सुंदरता सफर की सारी थकान को भुला देती है। गाड़ी से 21 किलोमीटर का सफर तय करने के बाद, लगभग 1500 सीढ़ियां चढ़कर शिकारी देवी मंदिर में पहुंचा जाता है। मंदिर की प्रथम झलक पाते ही सफर की सारी थकान एकदम दूर हो जाती है। मंदिर का दृश्य बहुत ही मनोरम था तथा चारों तरफ हरयाली ही हरयाली देख कर मन को एकदम शांति एवं खुशी का एहसास होता है।

शिकारी देवी मंदिर

मंदिर के दर्शन करने तथा शिकारी माता की पूजा–अर्चना करने के बाद हमने शाम लगभग 5.00 बजे नीचे की ओर अपनी यात्रा शुरू की। मंदिर के नीचे श्रद्धालुओं द्वारा भंडारे/भोज का आयोजन किया गया था, हालांकि यह खाना खाने का उचित समय नहीं था परंतु इस दिव्य स्थल पर हमने प्रशाद के रूप भंडारे का आनंद लिया।

तत्पश्चात शिकारी देवी अभयारण्य के प्राकृतिक घास के हरे–भरे मैदानों को निहारने के पश्चात हमने लगभग 07.30 बजे (साँय) कमरु नाग, जो जिला मंडी का एक बहुत ही प्रसिद्ध धार्मिक व मनमोहक पर्यटन स्थल है, की यात्रा प्रारम्भ की।

रात का सफर और उस पर रोड की दशा बहुत ही दयनीय, इसलिए हमनें शिकारी देवी से लगभग 10 किलोमीटर दूर देवदढ़ नामक स्थान पर एक होमस्टे में रात्रि विश्राम करने का निर्णय लिया। देवदढ़, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश का एक सुंदर एवं रमणीक स्थान है, जो 7800 फीट की ऊंचाई पर स्थित तथा घने देवदार के जंगलों से घिरा हुआ स्थान है। यह जीउणी घाटी का अंतिम गांव है और माता मुंडसन मंदिर के लिए भी प्रसिद्ध है।

माता मुंडसन मंदिर

देवदढ़, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश, एक पारि–पर्यटन स्थल जहाँ पर हिमाचल प्रदेश वन विभाग का बहुत ही सुंदर विश्राम गृह तथा यात्रियों के ठहरने के लिए टेंट और शेड भी लगाए गए हैं। यह क्षेत्र में पारि–पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा बड़ा कदम उठाया गया है। देवदढ़ में पारि–पर्यटन स्थल के विकास का मुख्य उद्देश्य स्थानीय पर्यटन को बढ़ावा देना और क्षेत्र के प्राकृतिक सौंदर्य को संरक्षित करना है। इससे न केवल स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं, बल्कि यह क्षेत्र एक लोकप्रिय पर्यटन स्थल के रूप में भी स्थापित हो रहा है जिससे इस क्षेत्र में आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। मुझे यह देख अत्यंत प्रसन्नता हुई कि पर्यटक सड़क के किनारे बैठे किसानों से बहुत ही उचित दरों पर आलू, प्याज, लहसुन और स्थानीय फल खरीद रहे थे।

हिमाचल प्रदेश वन विभाग द्वारा स्थापित पारि–पर्यटन स्थल

रात्रि विश्राम के पश्चात हमनें दिनांक 15 जून 2025 को प्रातः लगभग 07.00 बजे देवदढ़ से कमरुनाग की यात्रा प्रारम्भ की। देवदढ़ से जहल तक रास्ता लगभग ठीक–ठीक था परंतु जहल से कमरुनाग का रास्ता कच्चा तथा बेहद ही दयनीय स्थिति में था हालांकि कुछ वर्ष पहले तक इस रमणीक स्थल की यात्रा भी पैदल ही की जाती थी।

कमरु नाग मंदिर का इतिहास:

कमरूनाग मंदिर हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में स्थित एक प्रसिद्ध मंदिर है, जो अपनी पौराणिक कथाओं और

कमरु–नाग देवता की प्राचीन मूर्ति

झील के लिए जाना जाता है। जिला मंडी में कमरुनाग को बाड़ादेव के नाम से भी जाना जाता है। यह मंदिर भगवान कमरूनाग को समर्पित है, जिन्हें महाभारत काल के राजा यक्ष का अवतार माना जाता है। स्थानीय लोगों का मानना है कि कमरूनाग देवता वर्षा के देवता हैं और उनकी पूजा करने से मनोकामनाएं पूरी होती हैं।

मान्यता है कि कमरूनाग मंदिर की स्थापना पांडवों ने वनवास के दौरान की थी, और मूल मंदिर कमरूनाग झील में डूबा हुआ था। वर्तमान मंदिर 14वीं शताब्दी में मंडी के राजा द्वारा बनाया गया था। कमरूनाग झील के तल पर सोने, चांदी और सिक्कों का खजाना होने की भी मान्यता है। कमरुनाग झील मंदिर के पास स्थित एक पवित्र झील है। मान्यता है कि पांडवों ने इस झील का निर्माण किया था। भक्त अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए इस झील में सोना, चांदी और सिक्के चढ़ाते हैं। स्थानीय लोगों का मानना है कि झील में अरबों–खरबों का खजाना छिपा हुआ है।

सयोंग व सौभाग्यवश 15 जून को सक्रांत भी थी तथा इसी दिन इस पवित्र स्थल पर वार्षिक मेले का शुभारंभ भी होता है तथा यह मेला एक सप्ताह तक चलता है। कई स्थानीय देवता भी इस मेले में आकर मेले की शोभा बढ़ाते हैं, इसलिए वहाँ बहुत ही भीड़ थी तथा पर्यटकों के साथ स्थानीय श्राद्धलु भी इस मेले में उपस्थित थे। हमने भगवान कमरुनाग व स्थानीय देवताओं के दर्शन कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया तथा मेले का भी आनंद लिया। यहाँ भी प्रभु–भक्तों द्वारा भंडारे/भोज का आयोजन किया गया था, इसलिए हमने यहाँ भी प्रशाद के रूप में भंडारे का भरपूर आनंद लिया। इसके बाद, प्रकृति का आनंद लेते हुए हमने वापसी की यात्रा प्रारम्भ की तथा साँय 07.00 बजे अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच गए। यात्रा धार्मिक एवं पर्यटन की दृष्टि से बहुत ही सुखद, आनंदमय एवं अविस्मरणीय रही।

कमरु–नाग झील

लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

डॉ ए.एन सिंह
स.म.नि. (पर्यावरण प्रबंधन)

डॉ. विनोद कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री चन्द्र शर्मा
वैज्ञानिक–सी

श्री नवनीत गुप्ता
अनुभाग अधिकारी (सेवानिवृत्त)

श्रीमती सीमा ठाकुर
निजी सचिव

श्री अभिषेक खन्ना
तकनीकी सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

डॉ. अरुण प्रताप सिंह
वैज्ञानिक–जी

डॉ. माला राठौर
वैज्ञानिक–एफ (सेवानिवृत्त)

डॉ. अरविंद कुमार
वैज्ञानिक–एफ

डॉ. प्रतिमा पटेल
वैज्ञानिक–ई

डॉ. विजय प्रकाश पाण्डेय
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)

श्री एल. आर. पण्डा
वैज्ञानिक–सी

श्री दीपक कुमार महन्ता
वैज्ञानिक–बी

डॉ. नमिता एन.के.
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

सुश्री दीपिका,
तकनीकी सहायक

श्री उमाशंकर
तकनीशियन

श्री रोहन सोलंकी
तकनीशियन

श्री सचिन कुमार
तकनीशियन

श्री पुष्पेन्द्र सिंह
तकनीशियन

अतिथि लेखक

डॉ. सहदेव चौहान
वैज्ञानिक

श्रीमती सुधा पाण्डेय
धर्मपत्नी–डॉ. विजय प्रकाश पाण्डेय

भा.वा.अ.शि.प.- उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

डॉ. फातिमा शिरीन
वैज्ञानिक–जी

डॉ. नसीर मोहम्मद
वैज्ञानिक–ई

श्री सौरभ दुबे
तकनीकी अधिकारी

श्री मनोज पुसाम
तकनीकी सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

डॉ. मनीषा थपलियाल
निदेशक

डॉ. वनीत जिष्टु
वैज्ञानिक–ई (सेवानिवृत्त)

डॉ. स्वर्णलता
वैज्ञानिक–डी

डॉ. प्रवीन रावत
वैज्ञानिक–सी

श्री दिनेश कुमार धीमान
निजी सचिव

डॉ. शिवपाल
वरिष्ठ परियोजना सहयोगी

डॉ. श्रेया चौहान
परियोजना सहायक

डॉ. कपूर
परियोजना सहायक

डॉ. किरण सोनी
कनिष्ठ परियोजना सहायक

श्री ब्रिजभुषण
शोधार्थी

सुश्री मीनाक्षी
शोधार्थी

भा.वा.अ.शि.प.- वन उत्पादकता संस्थान, रांची

श्री रवि शंकर प्रसाद
मुख्य तकनीकी अधिकारी

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

डॉ. ध्रुव ज्योति दास
वैज्ञानिक–एफ

श्रीमती इल्लोरा दत्त बोरा
मुख्य तकनीकी अधिकारी
(सेवानिवृत्त)

श्री सोनकेश्वर शर्मा
वैज्ञानिक–सी

डॉ. मिताली मेहता
वैज्ञानिक–बी

श्रीमती रेखा माहातो
वैज्ञानिक–बी

श्रीमती बेबीजा एल. सिंघा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्रीमती रीताश्री खनिकर
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री अंकुर ज्योति सइकीया
तकनीकी सहायक

सुश्री पूजा दासगुप्ता
बहुकार्य कर्मचारी

सुश्री परिशमिता हजारिका
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

प्रकाशितः
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग,
विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
देहरादून (उत्तराखण्ड)

Print Vision Dehradun | 0135 2741702